पूंजीगत लेखे का उदारीकरण और मौद्रिक-नीति का संचालन : भारतीय अनुभव*

राकेश मोहन

1. समग्र दृष्टिकोण :

1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में शुरू की गयी हमारी समग्र सुधार प्रक्रिया का विशिष्ट लक्षण समष्टिगत आर्थिक और वित्तीय स्थिरता के परिवेश में उच्च आर्थिक संवृद्धि की प्राप्ति रही है। वास्तव में हमने मूल्य और वित्तीय स्थिरता को बनाए रखते हुए संवृद्धि में तेज़ गति प्राप्त की है।

इस अवधि के दौरान, कई अन्य सुधारों के अलावा हमने चालू खाते की परिवर्तनीयता पूरी की है और पर्याप्त मात्रा में पूंजीगत लेखे को उदार बनाया है। बढ़ती हुई इस उदारता से, हम बहिर्जात आघातों से नहीं बच रहे हैं। ये आघात वैश्विक और देशी दोनों प्रकार के हैं। इनमें 1990 के दशक में एशिया, ब्राज़िल, रूस और मेक्सिको में हुए वित्तीय संकट और अन्य घटनाएँ यथा यूएस में 9/11 को हुए उग्रवादी आक्रमण, सीमागत तनाव, न्यूक्लीयर परीक्षणों के बाद लगाए गए प्रतिबंध, राजनैतिक अस्थिरताएँ, सरकारों का बदलना और तेल का वर्तमान आघात भी शामिल हैं। फिर भी वित्तीय बाज़ारों में स्थिरता बनायी रखी जा सकी है। सचमुच 1990 के दशक के परवर्ती वर्षों में से मुद्रास्फ़ीति को पाँच प्रतिशत के आसपास नियंत्रण में रखा गया है। यह पिछले चार दशकों के सात से आठ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से स्पष्टतया कम है। साथ ही साथ, वित्तीय क्षेत्र की वास्तविक स्थिति में बहुत उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

भारतीय सुधारों के इतिहास के इस समय अच्छे लिखित प्रमाण (उदा. अहलूवालिया, 2002) उपलब्ध हैं; तो भी इसे समझा नहीं गया है कि भारत ने मूल्य तथा वित्तीय स्थिरता को बनाए रखते हुए संवृद्धि में तेज़ गति प्राप्त की है। वित्तीय बाज़ारों के बढ़ते हुए अविनियमन और वैश्विक अर्थ-व्यवस्था के संवर्धनात्मक

* वैश्वीकरण, मुद्रा-स्फीति और वित्तीय बाज़ार पर बाँके दे फ्रान्स, पैरिस, द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगोष्ठी में दि. 14 जून 2007 को डा. राकेश मोहन, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रस्तुत आलेख। इस आलेख को तैयार करने में श्री संजय हंसडा, इन्द्रनील भट्टाचार्य, पार्थ रे और एम.डी. पात्रा द्वारा दिये गये सहयोग के प्रति आभार माना जाता है।

एकीकरण के साथ, 1990 के दशक के वर्ष वैश्विक वित्तीय बाज़ारों के लिए अशांत थे, उस दशक में 63 देशों में संपूर्ण बैंकिंग संकट हुए जो 1980 के दशक के वर्षों के 45 से कहीं अधिक था। जिन देशों ने वैसे संकटों का सामना किया, उनके यहाँ वित्तीय प्रणाली के पुनर्निर्माण की लागत बहुत अधिक थी : उदाहरणार्थ, बैंकों के पुनर्पूंजीकरण की लागत अर्जेन्टीना में जीडीपी का 55 प्रतिशत, थाइलैण्ड में 42 प्रतिशत, कोरिया में 35 प्रतिशत और तुर्की में 10 प्रतिशत थी। साथ ही, गँवाए गये अवसरों और आर्थिक वृद्धि की मन्दगति की भी परोक्ष लागतें थीं (मैक्किन्से एंड कं, 2005)। इसलिए यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि विश्व के वित्तीय बाज़ारों की इस अशांत अवधि के दौरान भारत वित्तीय संकट का सामना किये बिना अपनी वित्तीय अविनियमन और खुली अर्थव्यवस्था की प्रणाली को आगे बढ़ा सका। जी.डी.पी. के 1 प्रतिशत से कम लागत पर सरकारी क्षेत्र के बैंकों का पुनर्पूंजीकरण करना तुलनात्मक रूप से कम है। इस कीर्तिमान से हम सचमुच संतुष्ट हो सकते हैं। पूँजीगत लेखे की पूर्ण परिवर्तनीयता और वित्तीय बाज़ारों के बढ़ते हुए एकीकरण के विशिष्ट संदर्भ में, हमें वित्तीय विकास के अगले चरण के लिए आवश्यक नये विषयों पर ध्यान देना होगा।

भारत पिछले 4 वर्षों में 30 से 33 प्रतिशत की सीमा में स्थित सकल घरेलू निवेश के स्तर से लगभग 8.5 से 9.0 प्रतिशत की वर्तमान वार्षिक जीडीपी वृद्धि को प्राप्त कर सका है। यह इसका संकेत है कि हमारी अर्थव्यवस्था पूर्ण दक्षता से कार्य कर रही है। इस प्रकार क्रमिक और उत्तरोत्तर सुधार करने की हमारी नीति संवृद्धि और दक्षता को खोकर तय की हुई नहीं कही जा सकती। हमें यह सुनिश्चित करना है कि हम इस स्तर की दक्षता को बनाए रखेंगे और इसे और बढ़ाएँगे। चूँकि भारतीय अर्थ-व्यवस्था ऐसे विकास पथ पर अग्रसर है और गति को तेज़ करने में प्रयासरत है, इसलिए वित्तीय प्रणाली की नई माँगें उठती हैं।

पूँजीगत लेखे के सतत और क्रमिक उदारीकरण के समक्ष, भारत में मौद्रिक नीति के संचालन को परखते हुए यह मुख्य सबक मिलता है कि इस प्रक्रिया को संपूर्ण सुधार-प्रक्रिया के संदर्भ में देखना होगा। जब कोई अर्थव्यवस्था बंद से खुली अर्थव्यवस्था में, पहले चालू लेखे में और बाद में पूंजीगत लेखे में परिवर्तित होती है, तब अनेक असमान क्षेत्रों में एक साथ कार्रवाई करने से ही वित्तीय स्थिरता के लाभ प्राप्त होते हैं। मौद्रिक नीति के ढाँचे को अपने आप बदलना होगा। यह बदलाव मौद्रिक कुल राशियों के नियंत्रण की पहली सीधी पद्धति से बाजार द्वारा संकेत दिए जाने की परोक्ष पद्धति में होगा। वैसे बदलाव के प्रभावी होने के लिए, सभी वित्तीय बाज़ारों के विकास और बाज़ार सूक्ष्म-मूलभूत आवश्यक तत्वों के निर्माण से मौद्रिक संचारण प्रक्रिया को सुदृढ़ करना होगा। बाह्य क्षेत्र में नियत या नियंत्रित विनिमय दर से बाज़ार द्वारा निर्धारित विनिमय दर में परिवर्तन के लिए, विदेशी मुद्रा बाज़ार की दक्षता, बाज़ार के सहभागियों के सामर्थ्य का सावधानीपूर्वक निर्धारण और विनिमय दर की अस्थिरता के प्रभाव का मूल्यांकन करना आवश्यक है। वित्तीय बाज़ारों का परिचालन और ज़्यादा खुली होने से अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित करनेवाली अस्थिरता पर राजकोषीय स्थितियां उल्लेखनीय प्रभाव डालती हैं। इसलिए मौद्रिक नीति की प्रभावोत्पादकता, वित्तीय बाज़ारों की दक्षता और बाह्य अस्थिरता निकट से यथोचित राजकोषीय नीति के प्रयोग से जुड़े हुए हैं। अंत में मौद्रिक नीति के कुशल संचारण और वित्तीय बाज़ारों की गंभीरता, चलनिधि और दक्षता के लिए वित्तीय बिचौलियों को मज़बूत बनाना होगा। इन सभी आपसी संबंधों की दृष्टि से मैंने उक्त प्रत्येक क्षेत्र में भारत

में पिछले डेढ़ दशक में हुई गतिविधियों का संक्षिप्त विहंगावलोकन करना पसंद किया है।

II. मौद्रिक नीतिगत उद्देश्यों के निर्धारण की प्रक्रिया

सामान्य उद्देश्य

पारंपरिक रूप से केन्द्रीय बैंक मूल्य-स्थिरता और संवृद्धि या रोज़गार के दुहरे उद्देश्यों का अनुसरण करते हैं। मूल उद्देश्यों का अनुसरण करते समय केन्द्रीय बैंकों को, व्यवस्थित वित्तीय बाज़ारों और वित्तीय स्थिरता पर ध्यान देना आवश्यक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि मौद्रिक नीति के उद्देश्य परस्पर संबद्ध और अदला-बदली के भी होते हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की प्रस्तावना बैंक के उद्देश्यों को इस प्रकार निर्धारित करती है : ''भारत में मौद्रिक स्थिरता प्राप्त करने की दृष्टि से तथा देश की मुद्रा व साख प्रणाली को उसके हित में संचालित करने के लिए बैंक नोटों के निर्गम और प्रारक्षित निधियों का रखरखाव करना।'' परन्तु मूल्य-स्थिरता लाने का सुस्पष्ट अधिदेश नहीं है। कई देशों की वर्तमान प्रवृत्ति यही है। फिर भी भारतीय मौद्रिक नीति के उद्देश्य मूल्य स्थिरता बनाए रखना और अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण वितरण को सुनिश्चित करना रहा है। संक्षेप में मौद्रिक नीति मूल्य-स्थिरता और आर्थिक संवृद्धि के बीच विवेकपूर्ण संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न करता है। मूल्य-स्थिरता और आर्थिक संवृद्धि के अनुपात का बल सामयिक परिस्थितियों पर निर्भर होता है। यह समय समय पर रिज़र्व बैंक की नीतिगत घोषणाओं में सूचित किया जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में बढ़ते हुए खुलेपन, वित्तीय एकीकरण और सीमापार भ्रष्टता को ध्यान में रखते हुए हाल के वर्षों में वित्तीय स्थिरता के विचारों को ज़्यादा महत्व दिया गया है। दूसरे देशों में वित्तीय अस्थिरता की लागत को हमने देखा है। इसलिए 1990 के दशक के दूसरे अर्धांश से मौद्रिक नीति के लक्ष्यों के अनुक्रम में वित्तीय स्थिरता ऊँची मानी जाने लगी। भारत में मूल्य-स्थिरता और वित्तीय स्थिरता के बीच ठोस सहक्रियाएँ और अनुपूरकताएँ देखी गयीं। तदनुसार हमारा विश्वास है कि वित्तीय प्रणाली के विनियमन, पर्यवेक्षण और विकास, स्थूल रूप से प्रतिपादित मौद्रिक नीति की तर्कसंगत सीमा में बने रहते हैं।

रूपरेखा :

भारत में 1997-98 तक मौद्रिक नीति व्यापक मुद्रा ($एम_3$) को मध्यवर्ती लक्ष्य मानते हुए संचालित होती थी। अर्थ व्यवस्था की प्रत्याशित संवृद्धि और मुद्रा-स्फीति की अनुमानित दर से सामंजस्य रखते हुए मुद्रा आपूर्ति को विनियमित करने का लक्ष्य था। इन दो निर्णायक मानदंडों के प्राक्कलन के आधार पर लक्षित मुद्रा-प्रसार तय किया जाता था। व्यवहार में मौद्रिक लक्ष्य की रूपरेखा का उपयोग वास्तविक क्षेत्र की गतिविधियों की प्रतिसूचना से लचीले ढंग से किया जाता था।

1990 के दशक में अर्थव्यवस्था के खुलेपन और वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के परिणामस्वरूप, मुद्रा, उत्पाद और कीमतों के बदलनेवाले आपसी संबंध से मौद्रिक लक्ष्य की रूपरेखा तय करने की उपयुक्तता पर संदेह प्रकट किया गया। तदनुसार, 1998-99 में रिज़र्व बैंक उसे बदलकर बहु-विध संकेतक दृष्टिकोण अपनाने लगा। इस दृष्टिकोण से, विभिन्न बाज़ारों (मुद्रा, पूँजी और सरकारी प्रतिभूति बाज़ार) की ब्याज दरों या प्रतिलाभ

दरों के साथ करेन्सी के डाटा, बैंकों और वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिये गये ऋण, राजकोषीय स्थिति, व्यापारिक गति, पूँजी प्रवाह, मुद्रा-स्फीति की दर, विनिमय दर, पुनर्वित्तीयन और उच्च आवृत्ति आधार पर विदेशी मुद्रा में उपलब्ध लेनदेन इन सब की जाँच उत्पाद के साथ करते हुए रिज़र्व बैंक मौद्रिक नीति तैयार करता है।

अपने सामाजिक-आर्थिक लक्षणों सहित भारतीय अर्थव्यवस्था की सुस्पष्ट विशेषताएँ आनेवाले कुछ समय में मुद्रा प्राधिकारियों को बहुविध उद्देश्यों को निश्चयपूर्वक बताने का अधिकार प्रदान करती हैं। पदानुक्रम में लक्ष्यों का ढेर लगाना स्पष्टता और पारदर्शिता के हित में वांछनीय हो सकता है; फिर भी प्रत्येक उद्देश्य के महत्व को समझकर निर्धारित भारांक सहित जूरी सार्वजनिक घोषणा करता है। मौद्रिक नीति के विन्यास में लचीलापन, पारदर्शिता के विचारों से सर्वोपरि होना चाहिए ताकि उद्देश्यों से संबद्ध भारित स्वरूप से सबको अवगत कराना ठोस बन्धनात्मक नियम न बन जाए। इसके अलावा, मौद्रिक नीति के प्रयोजनों के लिए अंतर्निहित समष्टि आर्थिक और वित्तीय स्थितियों पर सतत निगरानी रखने हेतु विभिन्न उद्देश्यों के लिए निर्धारित भारांकों को निरन्तर संतुलित रखना होगा। इसलिए मौद्रिक प्राधिकारी के लिए भीतरी गतिविधियों के अध्ययनार्थ ज़्यादा से ज़्यादा मुख्य उद्देश्यों को क्रम से सूचित करना पर्याप्त होगा।

मौद्रिक नीति के लिए एकमात्र उद्देश्य वाला साधन, जैसे अकसर बताया जाता है, भारत के लिए खासकर मध्यावधि में समर्थ नहीं होता। विश्लेषण करके यह दिखाने पर भी कि अन्य वास्तविक समझे जानेवाले उद्देश्यों में से एक उद्देश्य भी सांकेतिक हो तो वह उद्देश्य सर्वोत्कृष्ट दृढ़तर संकेत का काम कर सकता है और मौद्रिक नीति को संचालित कर सकता है; तथापि मौद्रिक नीति का उद्देश्य असफल नहीं होता। यह विचार इस विषय पर लिखे गये लेखों में व्यक्त व्यावहारिक और प्रभावी तत्वों से समर्थित है। यह तत्व मौद्रिक नीति की रूपरेखा के तौर पर मुद्रा-स्फीति को लक्ष्य बनाये जाने के हाल के प्रफलन पर संदेह प्रकट करता है (फ़्रॉइडमैन, 2000 मेक्काल्लम 1981)। एकमात्र अधिदेश की हिमायत में मुद्रा-स्फीति को लक्ष्य बनाये जाने की व्यवस्था के बारे में न्याय-निर्णायकों में मतभेद होता है। 1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों से मुद्रा-स्फीति को लक्ष्य बनाकर कार्य करनेवाले केन्द्रीय बैंकों की संख्या बढ़ती जा रही है। फिर भी विशेषकर फेडरल रिज़र्व बैंक बहु-विध लक्ष्यों को अपनाते हैं। मैं मौद्रिक विषय का विद्वान नहीं हूँ। पर, मेरा विचार है कि वर्तमान देशी और अंतर्राष्ट्रीय जटिलताओं के होते हुए हमें अपनी मौद्रिक नीति के लिए लचीली रूपरेखा जारी रखनी जाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में हमें एकतरफ़ा रुख को कम रखना होगा।

'मुद्रा-स्फीति की न्यून दर की प्राप्ति और विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण ऊँची और सतत संवृद्धि को भारत की मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य मानने पर भी, हमने भारत में मुद्रा-स्फीति को लक्ष्य बनाने की बात का समर्थन नहीं किया है। संवृद्धि को मुख्य उद्देश्य मानने के तर्कसंगत मामले के अलावा, कुछ अन्य ऐसे कारक होते हैं जो सुझाते हैं कि भारत के लिए मुद्रा-स्फीति को लक्ष्य मानना उचित नहीं हो सकता। पहला, कई अन्य विकासशील देशों से भिन्न होकर हमारे यहाँ संतुलित मुद्रा-स्फीति का रिकार्ड है। इसमें दो अंकों की मुद्रा-स्फीति मात्र अपवाद और सामाजिक रूप से बहुत अमान्य रही है। दूसरा, मुद्रा-स्फीति लक्ष्यांक को अपनाने के लिए कुशल वित्तीय बाज़ारों के परिचालन

और ब्याज-दर की विकृति रहित कार्यकुशल मुद्रा-संचारण तंत्र का होना आवश्यक है। भारत में यद्यपि मुद्रा बाज़ार, सरकारी प्रतिभूति बाज़ार और विदेशी मुद्रा बाज़ार सचमुच विकसित हो गये हों, फिर भी कंपनी ऋण के बाज़ार का विकास होना अभी बाकी है। ब्याज दरों का अविनियमन अधिकतर सफल हो गया है; परन्तु अभी कुछ नियंत्रित ब्याज दरें चालू हैं। तीसरा, कृषि पर मानसून के असर संबंधी आपूर्ति के उल्लेखनीय आघात अकसर पैदा होते हैं, जहाँ मौद्रिक नीतिगत कार्य की कोई भूमिका नहीं हो सकती। अंत में भारत जैसे बड़े आकार की अर्थव्यवस्था में सबको मान्य मुद्रा-स्फीति के माप का विकल्प अपनाना भी मुश्किल है। इसका कारण है, यहाँ के विभिन्न क्षेत्रीय अंतर और क्षेत्रों के बीच स्थित उपादान और उत्पाद की बाज़ारी अपूर्णताएँ' (मोहन, 2006 बी)।

भारत की मौद्रिक नीति के बहु-विध उद्देश्यों की वास्तविकता को मान लेना अत्यन्त आवश्यक होता है। भले ही हम मुद्रा-स्फीति के लिए कोई सुनिश्चित संख्यात्मक उद्देश्य न रखें, फिर भी, यह समझना आवश्यक है कि अतीत की तुलना में मूल्य-स्थिरता के उद्देश्य को हमें बेहतर और अधिक दृढ़ता से बताना आवश्यक होगा। सचमुच अनेक लक्ष्यों का अधिकार प्राप्त मौद्रिक नीति क्यों एकमात्र लक्ष्य मुद्रा-स्फीति दर की मात्रा को बताए? वास्तव में, मानसून के अभाव और विभिन्न कृषि उत्पादों और पेट्रोलियम उत्पाद की सरकार द्वारा निर्धारित कीमतों आदि से उत्पन्न आपूर्ति पक्ष के आघातों के प्रभुत्व के संदर्भ में, मुद्रास्फीति के लिए निश्चित अंकीय लक्ष्य को निर्धारित करने से केन्द्रीय बैंक की विश्वसनीयता खो जाने का खतरा हो सकता है। जीडीपी में कृषि का हिस्सा घटता जा रहा है और अब वह 20 प्रतिशत से कम है; इस समय कृषि क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण बना रहता है, क्योंकि जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि पर निर्भर रहता है। इसलिए, मुद्रा-स्फीति के लिए सुनिश्चित अंकीय लक्ष्य को निर्धारित करना बहुत बड़े घटक के बीच प्रतिष्ठा खो जाने के खतरे से परिपूर्ण है।

तिस पर भी जब भारतीय अर्थ-व्यवस्था पूँजीगत लेखे में पूर्ण परिवर्तनीयता के साथ अधिकतर खुली बनती जाती है, तब मुद्रा-स्फीति को क्रमिक रूप से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने और मूल्य-स्थिरता बनाये रखने का लक्ष्य अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। 1990 के दशक के आखिरी वर्षों से निरन्तर ऊँची दर में स्थित मुद्रास्फीति को 5 प्रतिशत के आसपास सफलतापूर्वक नीचे लाने का अनुभव, मुद्रा-स्फीतिगत प्रत्याशाओं को उल्लेखनीय रूप से नीचे ला चुका है।

जैसे जैसे हम कम मुद्रास्फीति दर और मूल्य-स्थिरता पर ज़्यादा ज़ोर देते जाते हैं, वैसे वैसे मुद्रा-स्फीति को समझने संबंधी संदेश-सूचना पर भी हमें सुधार लाना होगा। वर्तमान में सुर्खियों में आई मुद्रा-स्फीति अखिल भारतीय थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) के साप्ताहिक प्रकाशन से सूचित होती है। इसकी जगह अधिकांश देश उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआई) का उपयोग करते हैं। भारत में सीपीआई का उपयोग करना मुश्किल है, क्योंकि सीपीआई के 4 सूचकांक यहाँ विद्यमान हैं और प्रत्येक सूचकांक शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के अलग-अलग वर्ग के उपभोक्ता द्वारा प्रयुक्त वस्तु-समूह (बॉस्केट) का प्रतिनिधित्व करता है।

मुद्रा-स्फीति के उपयुक्त संकेतक को चाहिए कि (i) वह उसकी घटक मदों में होनेवाली कीमत-परिवर्तनों को सही रूप से दर्शाए (ii) सुर्खियों में आई मुद्रा-स्फीति की समझ प्रदान करे। यूके और यूरो क्षेत्र में अपनायी गयी सुमेलित उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (एचआइसीपी) के तरीके से अर्थव्यवस्था के लिए सुविस्तृत उपभोक्ता

मूल्य सूचकांक बनाना सुसाध्य होगा, भारत में अमीर और गरीब, शहरी और ग्रामीण तथा विभिन्न क्षेत्रों के बीच उपभोग्य वस्तु समूह के अंतर को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट नहीं है कि वह सामान्य कीमत स्तर के संकेतक के रूप में कितना उपयोगी होगा। वास्तव में थोक मूल्य सूचकांक, जो उत्पादक मूल्य के नाप के समान है, देश के आरपार अधिक प्रतिनिधिक और सुपरिचित हो सकता है, क्योंकि देश के आरपार ये मूल्य एक समान हो सकते हैं। इसलिए पण्य/सेवा पर आधारित मूल्य सूचकांक संकेतक/सूचना परिवर्ती के रूप में ज़्यादा उपयोगी होगा, न कि मुद्रा-स्फीति के लक्ष्य को परिभाषित करनेवाले के रूप में। इसके अलावा, डब्ल्यूपीआई साप्ताहिक आधार पर, दो सप्ताह की पश्चता से, उपलब्ध होते हैं, जब कि सी.पी.आई. सूचकांक मासिक आधार पर ही, दो मासों की पश्चता से, उपलब्ध होते हैं।

मौद्रिक नीति मुद्रा-स्फीति की प्रत्याशाओं के प्रबंधन से स्पष्टतया ज़्यादा संबंधित होनी चाहिए न कि वर्तमान मुद्रा-स्फीति से। इसलिए किसी परिवर्ती को मुद्रा-स्फीति की संकेतक सूची में शामिल करने का मार्गदर्शी मानक यह होना चाहिए कि उसमें भावी मुद्रा-स्फीति संबंधी सूचना की कितनी मात्रा निहित है। प्रवृत्ति/संभावना से उत्पाद की लगभग परिवर्तनीयता, क्षमता-उपयोग, स्टॉक, कारपोरेट कार्य निष्पादन, औद्योगिक/निवेश प्रत्याशाएँ और कुल मांग के अन्य संकेतक जैसे भावी मुद्रा-स्फीति के वास्तविक क्षेत्र संकेतकों का उप समूह महत्वपूर्ण होगा। प्रगामी दृष्टिकोण के साथ हमारी मौद्रिक नीति के गठन को बेहतर ढंग से सूचित करने के लिए हमने गत दो वर्षों से इन क्षेत्रों में अधिक मात्रात्मक तकनीकी कार्य शुरू किया है।

रिज़र्व बैंक ने मुद्रा-स्फीति प्रत्याशा के सर्वेक्षण भी शुरू किये हैं ताकि हमें जनता की बदलती मुद्रा-स्फीति प्रत्याशाओं के कुछ प्रत्यक्ष संकेतक प्राप्त हो सकें। ये त्रैमासिक सर्वेक्षण अभी भी प्रायोगिक परीक्षण के स्तर पर हैं। इसलिए उनके परिणाम अब तक जनता के अधिकार क्षेत्र में नहीं हैं। पर उनके प्रारंभिक परिणाम आशाजनक दिखते हैं।

केंद्रीय बैंक का अधिदेश जितना ज़्यादा जटिल होता है, उतनी ही ज़्यादा संदेश सूचना की आवश्यकता होती है (मोहन 2005)। रिज़र्व बैंक के मिश्रित लक्ष्य होते हैं। मौद्रिक नीति के अनुगमन के साथ साथ रिज़र्व बैंक की अभिभावी चिन्ताओं में से वित्तीय स्थिरता एक है। मौद्रिक नीति के लक्ष्य के अंदर मुद्रास्फीति का नियंत्रण और संवृद्धि के प्रोत्साहनार्थ अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण प्रदान करना, दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, रिज़र्व बैंक बैंकिंग विनियामक, लोक ऋण प्रबंधक, सरकारी ऋण बाज़ार विनियामक और करेन्सी जारीकर्ता के रूप में कार्य करता है। ऐसे अनेक कार्यों और जटिल अधिदेश का सामना करने के लिए रिज़र्व बैंक की तरफ़ से अधिक स्पष्ट सूचना की अत्यन्त आवश्यकता है।

बाज़ार सहभागियों, अन्य विनियामकों, विशेषज्ञों के प्रतिनिधियों के साथ रिज़र्व बैंक में विभिन्न तकनीकी परामर्शदात्री समितियों (टीएसी) का गठन, मौद्रिक नीति के कार्यान्वयन में पारदर्शिता का महत्वपूर्ण कदम है। अंतर्राष्ट्रीय श्रेष्ठ प्रथाओं के अनुरूप और मौद्रिक नीति में परामर्श की प्रक्रिया को और मज़बूत करने के लिए जुलाई 2005 में रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक नीति पर तकनीकी सलाहकार समिति (टीएसीएमपी) का गठन किया। इस समिति में मौद्रिक अर्थशास्त्र, केन्द्रीय बैंकिंग, वित्तीय बाज़ार और लोक वित्त के क्षेत्रों के बाहरी विशेषज्ञ हैं। यह समिति कम से कम तीन महीने में एक बार मिलकर समष्टिगत

आर्थिक और मौद्रिक गतिविधियों की समीक्षा करती है और रिज़र्व बैंक को मौद्रिक-नीति के रुझान पर परामर्श देती है। भारत में मौद्रिक नीति के विन्यास की प्रक्रियाओं और निविष्टियों को परिपुष्ट बनाने में इस समिति ने योगदान किया है। यह विचाराधीन प्रश्न है कि आगे और संस्थागत परिवर्तनों की आवश्यकता है कि नहीं।

III. मौद्रिक नीति के लिखतों का विकास और प्रेषण प्रक्रिया

मौद्रिक नीतिगत रूपरेखा के संरचनात्मक परिवर्तनों से सामंजस्य रखते हुए, नीति की प्रभावोत्पादकता को बढ़ाने के लिए प्रेषण माध्यमों में सुधार शीघ्र ही सहवर्ती लक्ष्य बनकर उभर आये। पर्याप्त मौद्रिक प्रेषण के बिना मौद्रिक नीति स्पष्टतया कार्य नहीं कर सकती। वित्तीय बाज़ारों के समग्र कार्य और उनके एकीकरण में ब्याज दरों तथा विनिमय दरों की कुशल कीमतों की खोज के बिना उचित मौद्रिक प्रेषण नहीं हो सकता। इसलिए मुद्रा-बाज़ार, सरकारी प्रतिभूति बाज़ार और विदेशी मुद्रा बाज़ार का तदनुरूप विकास आवश्यक हुआ। अतएव 1990 के दशक से रिज़र्व बैंक एक ही समय में देशी वित्तीय बाज़ार स्पेक्ट्रम का विकास करने लगा। इनका क्रम ब्याज दरों की अविनियमन-प्रणाली, सांविधिक पूर्वक्रय अधिकार को वापस लेना, मौद्रिक-राजकोषीय समन्वय में गुणात्मक प्रगति और बाज़ार उन्मुख विनिमय दर नीति सहित विनिमय तथा भुगतान प्रणाली का उदारीकरण रहा। भारत में वित्तीय बाज़ारों के विकास में बाज़ार के नए खंड, और नई लिखतें प्रारंभ कर विनियामक नियंत्रण पर ध्यान केन्द्रित करने को भी सम्मिलित किया गया।

हमने विच्छेद को कम करते हुए तथा वित्तीय स्थिरता को बनाए रखते हुए समयावधि पर नियंत्रित ब्याज दर प्रणाली से बाज़ार नियत ब्याज दर प्रणाली अपनाने के लिए सावधानीपूर्वक नपा तुला परिवर्तन किया है। इस दृष्टिकोण ने बाज़ार के सहभागियों को भी नई प्रणाली के अनुकूल अपने को बना लेने के लिए पर्याप्त समय दिया।

मौद्रिक नीति की बढ़ती बाज़ार अभिमुखता ने निश्चयात्मक रूप से लिखतों के विकल्प को प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष और बाज़ार आधारित मौद्रिक नीतिगत उपायों की ओर झुका दिया है। 1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक, वित्तीय प्रणाली की लाभप्रदता और मौद्रिक नीति की प्रभावोत्पादकता को अत्यधिक कम करते हुए, आरक्षित नकदी निधि अनुपात (सीआरआर) और सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) के रूप में सांविधिक पूर्वक्रय अधिकारों ने लगभग 65 प्रतिशत की बैंक जमाओं को जकड़ा दिया। एसएलआर 1992 के प्रारंभ की निवल मांग और मीयादी देयताओं (एनडीटीएल) के 38.5 प्रतिशत से अक्तूबर 1997 में 25 प्रतिशत पर कम किया गया। सीआरआर क्रमिक रूप से 1991 के 15 प्रतिशत से 2003 में 4.5 प्रतिशत पर कम किया गया था, पर वर्तमान मौद्रिक नीति को कठोर बनाने के दौर में, क्रमिक रूप से फिर बढ़ाकर उसे 6.5 प्रतिशत करना पड़ा था। सांविधिक संशोधन करके सीआरआर में स्थित पहले के न्यूनतम 3 प्रतिशत और अधिकतम 20 प्रतिशत को हटा देने से मौद्रिक स्थिति-परिवर्तन करना अब सुदृढ़ हो गया है। रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति के परिचालन को अधिक लचीला बनाने के लिए एसएलआर की सांविधिक न्यूनतम 25 प्रतिशत को भी हटा दिया गया है।

सरकार और रिज़र्व बैंक के बीच सितंबर 1994 में हुए करार के द्वारा अप्रैल 1997 से सरकार के राजकोषीय घाटे का अपने आप मुद्रीकरण करना बंद किया गया। अधिक स्वतंत्र मौद्रिक नीति परिवेश बनाने में यह प्रमुख

नीतिगत घटना थी। मौद्रिक-राजकोषीय समन्वयन में यह विशेष महत्वपूर्ण घटना थी। सुधार-पूर्व काल में संचित विनिमय गारंटियों के भार से रिज़र्व बैंक के तुलन-पत्र को मुक्त रखना दूसरा महत्वपूर्ण संस्थागत परिवर्तन था। उसके बाद, राजकोषीय दायित्व तथा बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003 ने संस्थागत व्यवस्था को और सुदृढ़ कर दिया है। अप्रैल 2006 से प्राथमिक बाज़ार में केन्द्र सरकार की प्रतिभूतियों में रिज़र्व बैंक को अभिदान करने की अनुमति अब नहीं है। यह कदम सरकारी प्रतिभूतियों के लिए पूर्ण बाज़ार आधारित प्रणाली में परिवर्तन को पूरा कर देता है। आगे, बारहवें वित्त आयोग की सिफ़ारिशों के फलस्वरूप, केन्द्र सरकार ने अब राज्य सरकारों की तरफ़ से संसाधन जुटाना बंद कर दिया है, क्योंकि बाज़ारों में अब राज्य सरकारों की सीधी पहुँच है। इस प्रकार संसाधन जुटाने की राज्य सरकार की कुशलता बाज़ार से निश्चित की जाएगी और यह उनकी वित्तीय स्थिति पर आधारित होगा। अबाध परिवर्तन को सुनिश्चित करने के लिए मौद्रिक परिचालनों के और अधिक एकीकरण की ओर संस्थागत प्रणालियों को सुधारा जा रहा है।

प्रेषण में मुद्रा-बाज़ार की प्रमुख भूमिका के होते हुए 1980 के दशक के पश्चात्वर्ती वर्षों में किये गये प्रयासों को पूर्ण क्षेत्र में तीव्र किया गया। 1989 में अंतर बैंक मुद्रा बाज़ार दरों की उच्चतम सीमा को हटाए जाने के बाद मुद्रा बाज़ार लिखतों के रूप में कई नए वित्तीय उत्पाद चरणबद्ध तौर पर लागू किये गये। जमा प्रमाण-पत्र, वाणिज्य-पत्र और मुद्रा बाज़ार पारस्परिक निधि इनके उदाहरण हैं। व्यापारियों की संख्या को बढ़ाकर मुद्रा बाज़ार के लिखतों के निर्गम और अभिदान के मानदंडों में ढील देते हुए प्रवेश के व्यवधानों से धीरे धीरे मुक्त किया गया जिससे बेहतर मूल्य-प्राप्ति हो सके। मुद्रा-प्रेषण में एवं विवेकपूर्ण विचारों में सुधार करने के लिए 1999 में मांग मुद्रा बाज़ार को पूर्णतःअंतर-बैंक बाज़ार में बदलने के कदम शुरू किये गये। खासकर मांग मुद्रा खंड से बाहर किये गये बैंकेतर संस्थाओं और बैंकों को स्थायी संपार्श्विकीकृत निधीयन विकल्प प्रदान करने हेतु इसके साथ साथ कार्यालयीन पटल के बाहर रिपो बाज़ार विकसित किया गया। संपार्श्विकीकृत उधार और ऋणदायी बाध्यता (सीबीएलओ) नामक रिपो लिखत भारतीय समाशोधन निगम लिमिटेड (सीसीआइएल) द्वारा अपने सदस्यों के लिए विकसित किया गया। सीसीआइएल उधारकर्ताओं और उधारदाताओं के लिए केन्द्रीय प्रतिपक्ष की हैसियत से कार्य करेगा। इसे 2002 में मुद्रा बाज़ार लिखत के रूप में अनुमति दी गयी। बाज़ार रिपो और सीबीएलओ खंडों के विकास से अगस्त 2005 से प्राथमिक व्यापारियों सहित मांग मुद्रा बाज़ार पूर्णतः अंतर बैंक बाज़ार के रूप में बदल गया है। हाल ही की उल्लेखनीय गतिविधि यह है कि मुद्रा बाज़ार की काफ़ी गतिविधियाँ असंपार्श्विकीकृत मांग मुद्रा खंड से संपार्श्विकीकृत बाज़ार रिपो तथा सीबीएलओ बाज़ारों की ओर अंतरित हो गई हैं। इस प्रकार वित्तीय स्थिरता को ध्यान में रखते हुए असंपार्श्विकीकृत एक दिवसीय लेनदेन अब बैंकों और प्राथमिक व्यापारियों तक सीमित हैं। मुद्रा बाज़ार के विकास में तकनीकी उन्नयन ने साथ दिया है। मांग/सूचना और आवधिक मुद्रा बाज़ारों में स्क्रीन-आधारित तयशुदा दर-संचालित प्रणाली लागू करने के प्रयास अभी किये जा रहे हैं। बाज़ार के सहभागी चलनिधि स्थितियों का मूल्यांकन कुशलता और पारदर्शी तरीके से कर सकें, इसके लिए एक दिवसीय दरों और मात्राओं संबंधी जानकारी रिज़र्व बैंक द्वारा उपलब्ध करायी जाएगी।

1992 में सरकारी प्रतिभूति बाज़ार को नीलामी आधारित प्रणाली में बदला गया ताकि बेहतर मूल्य-प्राप्ति हो सके और परिचालनों में अधिक पारदर्शिता

प्रदान की जाए। यह प्रमुख संस्थागत परिवर्तन था। इसने मुद्रा और विदेशी मुद्रा बाज़ार को उदार बनाए जाने और राजकोषीय घाटे का स्वतः मुद्रीकरण करना बंद किये जाने के कारण आनेवाले प्रगामी अविनियमन के लिए अनुकूल वातावरण बनाया। इसके बाद 1995 में सरकारी प्रतिभूतियों में लेनदेन करने हेतु पूर्ण पूंजीकृत प्राथमिक व्यापारियों का स्थापन हुआ। अप्रैल 1997 तक सरकारी प्रतिभूतियों के लिए सुपुर्दगी बनाम अदायगी प्रणाली लागू करने, प्रतिभूतियों के विपणन हेतु नए तकनीक अपनाने, नई लिखतों खास करके विभिन्न परिपक्वतावाले खज़ाना बिलों, केंद्र सरकार की सभी दिनांकित प्रतिभूतियों और सभी परिपक्वतावाले खज़ाना बिलों पर रिपो सुविधा प्रस्तुत करने का सहारा दिया गया।

अप्रैल 1992 से केंद्र सरकार का दिनांकित प्रतिभूतियों से उधार लेने का सारा कार्यक्रम नीलामी द्वारा चलाया जा रहा है। 2005 में जोखिमों को कम करने के लिए रिज़र्व बैंक ने बेहतर कीमत प्राप्ति और निपटान प्रणालियों के लिए गुमनाम आदेश मेल मिलाने की (आर्डर मैचिंग) प्रणाली शुरू की। व्यापार को और क्रियाशील बनाने तथा प्रतिभूति बाज़ार को गहन बनाने के लिए हाल ही में 'व्हेन इश्यूड' मार्केट की शुरूआत की भी घोषणा की गयी है। ये सभी उपाय महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए हैं और नए राजकोषीय सुधार विकसित हो रहे हैं, जो ब्याज दरों की आवधिक संरचना के निर्माण में सहायक होते हैं। सरकारी प्रतिभूतियों की माँग अब सांविधिक चलनिधि अपेक्षाओं से अधिक, प्रभावी चल निधि प्रबंधन के सोच विचार से उत्प्रेरित है।

मार्च 1993 में बाज़ार तयशुदा विनिमय दर प्रणाली में परिवर्तित होने तथा बाद में विभिन्न बाह्य लेनदेनों के प्रतिबंधों का उदारीकरण कर, 1994 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के करार के अनुच्छेदों के आठवें अनुच्छेद के तहत चालू लेखा परिवर्तनीयता लागू किये जाने से भारतीय विदेशी मुद्रा बाज़ार विस्तृत और गहन हो गया है। 1990 के दशक के मध्य वर्षों से बाज़ार में काम करने के लिए बैंकों और अन्य प्राधिकृत इकाइयों को सार्थक स्वतंत्रता दी गयी है। बैंकों को अपनी व्यापारिक सीमाओं को तय करने और विदेशी बाज़ार में निर्दिष्ट सीमा तक उधार लेने और निवेश करने की स्वतंत्रता दी गयी है। उन्हें जोखिम की बचाव-व्यवस्था और आस्ति-देयता प्रबंधन के प्रयोजनों के लिए व्युत्पन्नी (डेरिवेटिव) उत्पादों के उपयोग की अनुमति दी गयी है। वैसे ही, कंपनियों को पिछले कुल कारोबार के आधार पर वायदा रक्षा बुक करने का लचीलापन दिया गया है और उन्हें ब्याज दर तथा मुद्रा की अदला-बदली (स्वैप), कैप्स/कालर्स और वायदा दर करार जैसे विभिन्न लिखतों का उपयोग करने की अनुमति दी गयी है। हाल के वर्षों में दीर्घावधि जोखिम (एक्सपोज़र) की बचाव व्यवस्था के लिए अदला-बदली बाज़ार पर्याप्त विकसित हो गया है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, संविभागीय निवेश, प्रत्यक्ष निवेश एवं निक्षेपागार (डिपाज़िटरी) रसीद और परिवर्तनीय बांड को सम्मिलित करते हुए बहिर्गमन (आउटवेर्ड) निवेश, विदेश में भारतीय कंपनियों का कार्यालय खोलना आदि को शामिल करते हुए पूंजीगत लेखे के उदारीकरण के लिए भी कई कदम उठाए गए हैं। हाल के वर्षों में रिज़र्व बैंक ने विनिमय नियंत्रण प्रणाली को बैंकों और प्राधिकृत व्यापारियों को यहाँ तक सौंप दिया है कि किसी अनुमोदनार्थ रिज़र्व बैंक में आने की शायद ही कोई आवश्यकता पड़े। रोज़ के 28 बिलियन अमरीकी डालर के कुल कारोबार के साथ (अप्रैल 2007 के अंत की स्थिति) विदेशी मुद्रा बाज़ार के विभिन्न खंडों की गतिविधियों की तेज़ कार्यशक्ति इन सुधारों की वजह से प्रतीत होती है।

व्यापार, समाशोधन, भुगतान और निपटान के सही तकनीकी बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करना, भारत में वित्तीय बाज़ारों के विकास पर ज़ोर देने का प्रमुख क्षेत्र होता है। 1990 के दशक के परवर्ती वर्षों से अंतर्राष्ट्रीय श्रेष्ठ प्रथाओं से सामंजस्य रखनेवाली आधुनिक संतुलित भुगतान और निपटान प्रणाली को लागू करना रिज़र्व बैंक का महत्वपूर्ण लक्ष्य बनकर उभरा है। इस विषय पर समेकन, विकास और एकीकरण की त्रिविध योजना का अनुसरण किया गया है। अद्यतन तकनीकी स्तर प्रदान कर वर्तमान भुगतान प्रणाली को सुदृढ़ करना समेकन है। विकास के आयाम में वास्तविक समय सकल निपटान, केन्द्रीकृत निधि-प्रबंधन, प्रतिभूति निपटान और सुनियोजित इलेक्ट्रानिक वित्तीय संदेश प्रेषण शामिल हैं। बाज़ार विकास के तकनीकी तत्वों में निम्न-लिखित प्रमुख विषय शामिल हैं : इलेक्ट्रानिक समाशोधन (1994 में लागू किया), इलेक्ट्रानिक निधि अंतरण (1996), मुम्बई में केन्द्रीकृत निपटान सहित त्वरित निधि अंतरण (2003), तयशुदा लेनदेन प्रणाली (एनडीएस), व्यापार की इलेक्ट्रानिक रिपोर्टिंग और ऑन-लाइन प्रसार प्रणाली तथा सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गम के लिए स्क्रीन पर आधारित आर्डर मैचिंग प्रणाली, (2002)तथा बैंकों, वित्तीय संस्थाओं और प्राथमिक व्यापारियों द्वारा विदेशी मुद्रा, सरकारी प्रतिभूतियों व अन्य ऋण लिखतों के समाशोधन व व्यापार-निपटान के लिए प्रवर्तित भारतीय समाशोधन निगम लिमिटेड (सीसीआइएल) जिसने अप्रैल 2001 में कार्यारंभ किया। अंतरराष्ट्रीय श्रेष्ठ नियमों का पालन करते हुए सीसीआइएल सभी लेनदेनों के लिए केन्द्रीय प्रतिपक्ष पार्टी के रूप में कार्य करता है और प्रतिपक्ष जोखिम का निरसन करते हुए उसके नियम व विनिमय के अनुसार किये गये व्यापार के निपटान की गारंटी देता है। भुगतान और निपटान प्रणाली का निरीक्षण कार्य राष्ट्रीय भुगतान परिषद और रिज़र्व बैंक के अंदर स्थापित भुगतान और निपटान प्रणाली बोर्ड को प्रदान किया गया है।

मौद्रिक नीति के सफल प्रसारण हेतु बाज़ार और संस्थागत ढाँचे को विकसित करने के लिए जो उपाय करने थे, उनके संक्षिप्त विवरण से देखा जा सकता है कि बाज़ारों का विकास श्रम और समय-साध्य कार्य है जिसके लिए प्रबुद्ध नीति-निर्धारण और कार्यान्वयन आवश्यक है। बाज़ार रातोंरात विकसित होकर कार्य नहीं करते, उनके स्वायत्त रूप से कार्य करने के पहले, उन्हें स्थापित व प्रशिक्षित कर निरन्तर उनकी निगरानी करनी पड़ती है। मौद्रिक प्रवृत्ति के सफल प्रसारण के लिए स्पष्टतया बाज़ारों का एकीकरण आवश्यक है।

समस्याएँ :

मौद्रिक नीति के प्रसारण माध्यमों की बाधाएँ दूर करने और नीति-परिवर्तन के संकेतन प्रभाव को बढ़ाने के लिए ब्याज दर अविनियमन अत्यावश्यक है। यद्यपि इस दिशा में काफ़ी प्रगति हुई है, फिर भी अभी भी विकसित होनेवाली अर्थव्यवस्था के संदर्भ में नीति की विभिन्न मध्यस्थताओं की आवश्यकता से पूर्ण अविनियमन में बाधा पड़ती है। पूरे देश में बैंकिंग के फैलाव को सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने 1969 में अधिकतर बैंकिंग प्रणाली का राष्ट्रीयकरण किया था। यद्यपि 1990 के दशक के मध्य वर्षों से निजी क्षेत्र के नए बैंक प्रचलित किये गये, फिर भी बैंकिंग आस्तियों का 70 प्रतिशत अभी भी सरकारी क्षेत्र के बैंकों में है। इन बैंकों को विभिन्न लोक-नीति संबंधी कार्यकलाप करना, खासकर कृषि, छोटे और मझौले उद्यमों के क्षेत्रों और समग्र वित्तीय समावेशन के उद्देश्य के लिए, जारी रखना पड़ता है। इसमें कुछ मात्रा तक ऋण आबंटन और ब्याज दर के निदेश भी शामिल

हैं। इसलिए मुद्रा प्रसारण सीमान्त पर मन्द करवाया जा सकता है।

सरकार सुविकसित सामाजिक सुरक्षा प्रणालियों के अभाव में, कई अल्प-बचत योजनाओं और भविष्य निधियों के लिए पक्का निर्धारित ब्याज दरें नियत करती है। बैंकों को निधियों के लिए अल्प बचत योजनाओं के साथ होड़ करनी पड़ती है। इसलिए बैंकों द्वारा संगृहीत दीर्घकालीन जमाओं पर दी जानेवाली ब्याज दरें कभी कभी बाज़ार की प्रतियोगी स्थितियों में प्रदत्त दरों से ऊँचे स्तर पर तय की जाती हैं। वास्तव में, यह उधार संबंधी ब्याज दरों की अधोमुखी निश्चलता का कारण होता है, जो मौद्रिक नीति को प्रभावी बनाने में कुछ उलझनें पैदा करती हैं। देश में समाजिक सुरक्षा की व्याप्ति और पर्याप्त रक्षा कवच के न होने से हमें इस वास्तविकता को समझकर लागू करना पड़ता है। ये अल्प बचत योजनाएँ सरकार द्वारा डाक-घरों की व्यापक पहुँच से और कुछ वाणिज्य बैंकों से लागू की जाती हैं । ये अल्प बचत करनेवालों के लिए सुरक्षित और स्थायी कर बचानेवाली लिखतें प्रदान करती हैं। यद्यपि वे मौद्रिक संचारण तंत्र को दुर्बल करने में कुछ दबाव डाल सकते हैं, फिर भी उन्हें शायद समग्र वित्तीय स्थिरता में योगदान देनेवाले समझना होगा। समय समय पर इन नियंत्रित ब्याज दरों को बाज़ार से तयशुदा दरों का आधार मानने का प्रस्ताव किया गया है। यद्यपि वास्तव में इन योजनाओं को युक्तिसंगत बनाया गया है, तथापि बेहतर सामाजिक सुरक्षा और पेंशन योजनाओं के आविर्भाव और शायद विपणनयोग्य सर्वोत्तम लिखतों की पहुँच पर ही अधिक प्रगति निर्भर करेगी।

अब सरकारी प्रतिभूति बाज़ार काफ़ी अच्छी तरह से विकसित है। पर बाज़ार के विभिन्न खंडों के बीच मौद्रिक संकेतन में मदद देने के लिए कारपोरेट ऋण बाज़ार को विकसित करना अभी बाकी है। तथापि, हम जानते हैं कि अधिकतर देशों में कारपोररेट बाण्ड बाज़ार का विकास करना मुश्किल रहा है। संसार के कारपोरेट बाण्ड बाज़ार में लगभग आधा यूएस में है और दूसरा 15 प्रतिशत जापान में है। अन्य देशों में से यूके में पुराना बाण्ड बाज़ार है। यूरोपीय बाण्ड बाज़ार यूरोपीय मौद्रिक एकीकरण और 'यूरो' के प्रचलन के बाद ही वास्तव में विकसित होने लगा है। विकासशील देशों में से शायद दक्षिण कोरिया में मात्र यथोचित सुविकसित बाण्ड बाज़ार होता है।

सुविकसित कारपोरेट ऋण बाज़ार के न होने से, ऋण लिखतों की मांग अधिकतर सरकारी प्रतिभूतियों व उसकी आय वक्र और उससे मौद्रिक प्रसारण में विद्यमान संकेतों पर संकेन्द्रित रही। बाज़ार-रचना के न होने से कारपोरेट ऋण के द्वितीयक बाज़ार में कम चलनिधि रही। सुगम प्रणालियों और कम लागत के कारण कारपोरेट लोग सार्वजनिक निर्गम की जगह निजी तौर पर आबंटन को वरीयता देते हैं।

निम्नलिखित को विकसित करना आवश्यक है : बंधक-समर्थित प्रतिभूतियाँ, ऋण-चूक अदला बदली (स्वैप), ऋण बढ़ाने हेतु बाण्ड बीमा कंपनियों, सूचीबद्ध कंपनियों, ऋण-सूचना ब्यूरो के लिए प्रकटीकरण आवश्यकता में ढील, गैर सूचीबद्ध कंपनियों के लिए श्रेणी निर्धारण की अपेक्षाएँ, प्राथमिक और द्वितीयक व्यापार की वास्तविक समय-सूचना देना और लाभ-निरपेक्ष संस्थाओं तथा छोटे कारपोरेट को बाण्ड बाज़ार में छोटी राशि से प्रवेश। कारपोरेट ऋण-बाज़ार को परिचालित करने में समर्थ संस्थागत और तकनीकी ढाँचे को स्थापित करने के संगठित प्रयास अभी किये जा रहे हैं। इसके अलावा, अपेक्षा

है कि सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में चालू सुधारों के साथ-साथ, पेंशन और भविष्य निधि के आविर्भाव दीर्घ-कालीन ऋण लिखतों की मांग बढ़ाएँ। इस प्रक्रिया में सरकारी प्रतिभूतियों का निवेशकर्ता-आधार विस्तृत हो जाएगा, जो मौद्रिक प्रसारण को नए भागीदारों और प्रतिभागियों में फैलाएगा।

मौद्रिक नीति को और कारगर बनाने के लिए मौद्रिक प्रसारण प्रक्रिया में निरन्तर सुधार करना चाहिए ताकि बेहतर मूल्य प्राप्ति हो सके। इस प्रयास में हमें चाहिए कि विभिन्न वित्तीय बाज़ारों को विकसित करें, ऋण बाज़ारों से उनका संबंध बढ़ाएँ, बाज़ार में विद्यमान विकृतियों को दूर करें और फिर से नियंत्रित ब्याज दरों को लागू करने की प्रवृत्ति से बाज़ आएँ।

IV. वित्तीय बाज़ारों का विकास :

मुद्रा बाज़ार, सरकारी प्रतिभूति बाज़ार और विदेशी मुद्रा बाज़ार की विकास प्रक्रिया में काफ़ी प्रगति हुई है। पूँजीगत लेखे के ज़्यादा उदार होने से हमें उनका और विकास करना होगा ताकि बाज़ार के प्रतिभागी अधिक अस्थिरता और आघातों को आत्मसात कर सकें। इनमें से प्रत्येक बाज़ार को और गहन होना आवश्यक है। पूंजीगत लेखे की परिवर्तनीयता में और प्रगति होने पर बहुविध लेखों, पूँजी प्रवाह में अस्थिरता, बढ़ते भ्रष्टाचार और जोखिम प्रबंधन में संपदा संस्थाओं की क्षमता के कारण बाज़ार के प्रतिभागियों को ज़्यादा जोखिम का मुकाबला करना पड़ सकता है।

मुद्रा-बाज़ार :

विभिन्न खंडों में एक दिन की (ओवर नाइट) अलग अलग दरें होने के कारण मुद्रा बाज़ार विखंडित रहता है। गैर-संपार्श्विक रहनेवाला मांग मुद्रा बाज़ार अब गैर बैंकों के हट जाने से, बैंकों और प्राथमिक व्यापारियों के बीच का पूर्ण अंतर-बैंक बाज़ार बन गया है। पास में मुख्यतः गैर बैंकिंग प्रतिभागियों के लिए अल्पकालीन प्रयोजनार्थ चलनिधि समायोजन सुविधा के तहत रिपो बाज़ार के बाहर बाज़ार रिपो उपलब्ध है। यह मुद्रा बाज़ार का संपार्श्विक खंड होता है। सीसीआइएल द्वारा इसके सदस्यों के बीच परिचालित सीबीएलओ बाज़ार और एक संपार्श्विक मुद्रा बाज़ार लिखत है। धीरे-धीरे पूर्ण अंतर बैंक माँग / मीयादी मुद्रा बाज़ार की ओर आगे बढ़ने के निर्णय से रिपो बाज़ार की विनियामक / परिचालन बाधाओं को दूर करना आवश्यक है। रिपो बाज़ार के विकास में संविदाओं को आवर्ती (रोल ओवर) बनाने में ही बाधा महसूस होती है। रिपो बाज़ार से लगातार निधि प्राप्त करने की सुविधा के लिए डीवीपी III (सुपुर्दगी बनाम भुगतान) में अंतरित कर रिपो के आवर्तन की अनुमति दी गयी है।

सवाल यह है कि मुद्रा बाज़ार के विभिन्न खंडों के एकीकरण के लिए पात्र संपार्श्विक लिखतें तथा सदस्यता के रूप में और कौन-सी गतिविधियाँ आवश्यक हैं ताकि मुद्रा बाज़ार संपूर्ण रूप से पूंजीगत खाते की पूर्ण परिवर्तनीयता तक बढ़ जाने में होनेवाले बाज़ार के उतार-चढ़ाव को संभाल सके। मुद्रा बाज़ार को विकसित करने में महत्वपूर्ण व्यवधान यह है कि मुद्रा बाज़ार शब्द अभी प्रकट होना है, इसलिए लाभ वक्र का क्रमिक विकास अपर्याप्त रहता है। पूंजीगत लेखे के और खोल देने के साथ ही हमें इसका पता लगाना है कि इस बाज़ार के निर्माण के लिए क्या करना होगा।

ब्याज दर व्युत्पन्नी :

तुलन पत्र में स्थित ब्याज दर के जोखिमों के लिए प्रभावी प्रतिरक्षा साधन प्रदान करने में और ब्याज दरों के उतार-चढ़ाव के आधार पर व्यापार को सुगम बनाने में, जो मंदडिया बिक्री के अभाव में संभव नहीं है,

सुविकसित ब्याज-दर व्युत्पन्न बाज़ार की आवश्यकता पर ज़्यादा ज़ोर देना जरूरी नहीं है। ब्याज दरों के अविनियमन ने वित्तीय बाजार के परिचालनों को कुशल और किफ़ायती बनाने में मदद की। उसने बाज़ार प्रतिभागियों के सामने होनेवाले जोखियों की व्यापक श्रृंखला उजागर की है। इन जोखिमों के प्रबंधन और नियंत्रण करने हेतु वायदा दर करार (एफआरए), ब्याज दर अदला बदली (आइआरएस) जैसी कई लिखतें जुलाई 1999 में प्रचलित की गयीं। ये ब्याज दर जोखिमों के खिलाफ़ प्रभावी बचाव व्यवस्था कर सकती हैं। साथ ही, जून 2003 में रिज़र्व बैंक ने विनिमय लेनदेन के ब्याज दर फ्यूचर्स (भावी सौदे) में, जिन्हें विनिमय केन्द्रों में लागू किया गया, लेनदेन करने का दिशा-निर्देश बैंकों/प्राथमिक व्यापारियों /वित्तीय संस्थानों को जारी किया था। काउंटर पर (ओटीसी) के उत्पादों के लेनदेन की मात्रा में तेज़ वृद्धि हुई। यद्यपि संविदाओं की संख्या और राशि में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, फिर भी बाज़ार में सहभागिता मुख्यतः चुनिंदा विदेशी व निजी क्षेत्र के बैंकों और प्राथमिक व्यापारियों (पीडी) तक ही सीमित बनी रहती है। वस्तुतः इस खंड में पीडी ही बाज़ार निर्माता होते हैं। विनिमय विक्रीत ब्याज-दर फ्यूचर्स बाज़ार के परिचालन में कुछ दिक्कतें महसूस की गयीं। इसलिए हम अब इस संरचना का पुनरवलोकन करने में लगे हैं ताकि वह ब्याज दर प्राप्ति और प्रतिरक्षा के लिए सक्रिय बाज़ार बन जाए।

ओटीसी व्युत्पन्नी बाज़ार की बढ़ती मात्राओं के होते हुए भी, जैसे कि विश्व-भर में होता है, इन लिखतों के लिए यथोचित कानूनी समर्थन की कुछ आशंकाएँ उठी थीं। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में उचित संशोधन करके इस विषय पर ध्यान दिया गया है। अब ओटीसी व्युत्पन्नी स्पष्ट रूप से कानूनन वैध हैं, भले ही किसी मान्यता प्राप्त स्टाक एक्सचेंज में उनका व्यापार नहीं किया जाता हो। ऋण बाज़ार में एक्सचेंज में विक्रीत व्युत्पन्नों की अपनी भूमिका होती है; पर उन्हें अपने स्वरूप से मानक उत्पाद होना चाहिए। दूसरी ओर ओटीसी व्युत्पन्नी, व्यापारी व्यक्तियों की आवश्यकता के अनुरूप बदले जा सकते हैं। इस प्रकार ओटीसी और विनिमय विक्रीत व्युत्पन्नी दोनों ही बाज़ार के विकास के लिए अत्यावश्यक हैं।

ओटीसी व्युत्पन्नियों के लिए केन्द्रीय प्रतिपार्टी आधारित समाशोधन व्यवस्था, प्रतिपार्टी जोखिम को कम करेगा और नेटिंग का लाभ प्रदान करेगा। इसलिए ओटीसी व्युत्पन्नियों के बाज़ार को सुदृढ़ बनाने और निहित जोखिमों को कम करने के लिए ओटीसी ब्याज दर व्युत्पन्नियों के लिए समाशोधन व्यवस्था पर भी विचार करना आवश्यक है। यह उपाय ओटीसी ब्याज दर व्युत्पन्नी बाज़ार को सुदृढ़ करेगा और सूचना देने की उचित अपेक्षाओं के द्वारा आवश्यक अधिक पारदर्शिता प्रदान करेगा।

दुनियाँ में हर कहीं अधिकांश व्यापार ओटीसी खंड में होता है। इसलिए इसका कोई कारण नहीं है कि हम क्यों नव परिवर्तन नहीं ला सकते और व्यापक पहुँच के लिए इलेक्ट्रानिक आधारित आर्डर मैचिंग (आदेश अनुरूप)व्यापार नहीं कर सकते ताकि बाज़ार की चलनिधि बढ़ाएँ। कारपोरेट बांडों के लिए विनिमय व्यापार प्रणाली प्रदान करने का काम चालू है।

ब्याज दर प्राप्ति, व्यापार और बचाव-व्यवस्था के लिए बाज़ारों के बेहतर परिचालन की व्यवस्था करनी है। इसलिए मैं व्युत्पन्नि बाज़ार के प्रतिभागियों से बाज़ार में ठोस और पर्याप्त जोखिम प्रबंधन प्रथाओं के अपनाए जाने के महत्व और आवश्यकता पर ज़ोर देना चाहता हूँ। इन दस्तावेज़ों पर कार्रवाई करते समय और अधिक जिम्मेदारी की आवश्यकता को अंतर्राष्ट्रीय अनुभव हमें सिखाते हैं। मेरी अपेक्षा यह होगी कि बाज़ार के प्रतिभागी

इन उत्पादों के लिए न केवल उपयुक्त जोखिम प्रबंधन नीति और प्रणालियों को लागू करें बल्कि इन पर कार्रवाई करने और इनमें निहित ज़ोखिमों को समझने के लिए मानव संसाधन की कुशलता विकसित करने को भी समान महत्व दें। जैसे जैसे ब्याज दर व्युत्पन्नी बढ़ते हैं, वैसे वैसे उनके लेखाकरण और प्रकटन के क्षेत्र पर भी ध्यान आवश्यक है। यह आवश्यक है कि संबंधित मानक व्यापक और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर आधारित हों।

सरकारी प्रतिभूति बाज़ार :

राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम, 2003 का कानून बन जाने के बाद अप्रैल 2006 से लेकर रिज़र्व बैंक को प्राथमिक बाज़ार में सरकारी प्रतिभूतियों का अभिदान करने की अनुमति नहीं है। नई व्यवस्था में सुगम परिवर्तन को सुनिश्चित करने के लिए वर्तमान संस्थागत प्रणालियों के पुनर्विन्यास का काम शुरू किया जा चुका है (मोहन, 2006 अ)। मौद्रिक परिचालनों को संचालित करने हेतु ये कदम अपेक्षित एकीकरण प्राप्त करने में सहायक हो रहे हैं।

नए परिवेश में, रिज़र्व बैंक को द्वितीयक बाज़ार में खुले बाज़ार के कार्यकलापों को (ओएमओ) अधिक संपन्न करना आवश्यक हो सकता है। वैसे परिचालन, एलएएफ़ (चलनिधि समायोजन सुविधा) या एमएसएस (बाज़ार स्थिरीकरण योजना) से गुणात्मक रूप से भिन्न होंगे, जो मुख्यतः अल्पकालीन प्रयोजन के लिए चलनिधि प्रबंधन के विचारों से संचालित हैं। सवाल है कि द्वितीयक बाज़ार के वैसे परिचालनों के निर्धारक तत्व क्या होना चाहिए। सामान्यतः अल्पकालीन ब्याज दर को नियंत्रित कर, बाज़ार को आय वक्र का शेष तय करने देते हुए, केन्द्रीय बैंक आय वक्र के आरपार मौद्रिक नीति की गति को संचारित करने का प्रयत्न करता है। बदले में प्रधान आय वक्र अर्थव्यवस्था की उधार व जमा दरों को प्रभावित करता है। ज्यों ही बैंक उधार-दर प्रभावित होती है, त्यों ही उपभोग और निवेश जैसी असली परिवर्तियां प्रभावित होती हैं। ये बदले में उत्पाद और मुद्रा-स्फीति स्तरों को प्रभावित करती हैं। इसलिए विभिन्न परिपक्वताओं में सरकारी प्रतिभूति बाज़ार को अब तक गहन और नकदी बाज़ार बनकर उभर आना बाकी है। ऐसी स्थिति में, मौद्रिक प्रसारण के हित में सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में आय व परिपक्वता के स्पेक्ट्रम (चित्र) में द्वितीय बाज़ार परिचालन की वस्तु-स्थिति है। प्राथमिक बाज़ार से रिज़र्व बैंक के हट जाने के संदर्भ में यह अधिक आवश्यक है।

सरकारी प्रतिभूतियों के खुदरा-धारण में सुधार लाने के प्रयत्न जारी हैं, क्योंकि सरकारी प्रतिभूति बाज़ार अभी भी गहन नहीं है और वह चलनिधि के बारे में एक दिशिक प्रत्यक्ष ज्ञानवाले बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के अधिकार में है। सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में खुदरा सहभागिता को आकर्षित करने हेतु आगे का सर्वप्रथम कार्य यह है कि छोटे निवेशकों को पर्याप्त प्रतिलाभ और नकदी सहित सुरक्षित व विश्वसनीय निवेश-मार्ग प्रदान किया जाए। इस संदर्भ में, रिज़र्व बैंक गैर संस्थागत खुदरे/छोटे निवेशकों की, पर्चियों के गुम जाने या द्वितीयक बाज़ार के निपटान से होनेवाली जोखिम कम करने हेतु डीमैट-धारण सुविधा प्रदान करने पर ज़ोर दे रहा है। जनवरी 2002 से विवेक-रहित निवेशकों को प्राथमिक निर्गम की सीधी पहुँच के लिए बिना प्रतियोगिता के बोली लगाने की व्यवस्था प्रचलित की गयी है।

सरकारी प्रतिभूति बाज़ार में व्यापार व निपटान की सुविधाओं में सुधार लाने के निरंतर प्रयास के अंश के रूप में, रिज़र्व बैंक ने 1 अगस्त 2005 को निगोशिएटेड डीलिंग सिस्टम - आर्डर मैचिंग (संक्षिप्त में एनडीएस-ओएम) पर सरकारी प्रतिभूतियों के लिए इलेक्ट्रानिक

आर्डर मैचिंग व्यापार मोड्यूल आरंभ कर दिया है। एनडीएस-ओएम सहभागियों को उपलब्ध अतिरिक्त सुविधा है और प्रतिभागियों को एनडीएस के वर्तमान रिपोर्टिंग व ट्रेडिंग प्लैटफ़ार्म का उपयोग करने का विकल्प अब भी है। सरकारी प्रतिभूतियों में कुल व्यापारित मात्रा के महत्वपूर्ण अंश एनडीएस - ओएम के लेखे में अब होता है। फिर भी जून 2003 में शेयर बाज़ारों (एनएसई, बीएसई और ओटीसीईआई) में लागू की गयी देशव्यापी गुमनाम स्क्रीन आधारित आर्डर ड्रिवन प्रणाली में व्यापार बहुत ही कम मात्रा में होता है। इसे पुनःप्रवर्तित करने पर ध्यान देना आवश्यक है।

कारपोरेट ऋण बाजार :

कारपोरेट ऋण बाज़ार को क्रियाशील बनाने के लिए सरकार ने इसके तौर-तरीकों के निदेश देने के लिए विशेषज्ञ समिति (अध्यक्ष: आर.एच. पाटील) गठित की थी (भारत सरकार, 2005)। मैं इसके प्रमुख मुद्दे पर ज़ोर देना चाहता हूँ। सरकारी प्रतिभूति बाज़ार को विकसित करने के अनुभव की सीख से, हमें कारपोरेट ऋण बाज़ार को विकसित करने के लिए सुविचारित उचित सिलसिलेवार नियमित रूप से आगे बढ़ना होगा। वित्तीय बाज़ार के विकास में कई संगठनों की कार्रवाई शामिल है। स्पष्टतः इसका प्रमुख उद्देश्य संस्थानों के कुशलतम विनियोग में श्रेष्ठ उत्पाद का उपयोग और बचतकर्ताओं से निवेशकों को कुशल मध्यस्थता करनी होती है। दूसरे शब्दों में बैंकिंग विकास, इक्विटी बाज़ार विकास और ऋण बाज़ार का विकास साथ-साथ होते हैं। ऋण बाज़ार के अन्दर मूल्य-प्राप्ति और कारपोरेट बाण्डों की ऋण जोखिम मुक्त आय वक्र से अलग कीमत निर्धारित कर विश्वसनीय बेंचमार्क प्रदान करने के लिए कुशल सरकारी प्रतिभूति बाज़ार अत्यावश्यक है।

प्रमुख समस्या यह है कि कारपोरेट बाण्ड बाज़ार के कार्य करने हेतु हमें बड़ी संख्या में निर्गम कर्ताओं, बड़ी संख्या में निवेशकों और बड़े आकार के निर्गमों की आवश्यकता है। यह नोट किया जा सकता है कि कारपोरेट बाण्डों के बारे में उल्लिखित प्रत्येक समस्या पर सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के विकास के संदर्भ में ध्यान दिया गया है। उससे पता चलता है कि समस्याएँ दुस्तर नहीं हैं, पर उनके समाधान करने में कुछ समय लगता है। लेकिन हमने अभी शुरू किया है और कार्य अब प्रगति पर है। यह सच है कि अधिक सरल होने पर भी सरकारी प्रतिभूति बाज़ार के विकास में लंबा समय लगा। कारपोरेट ऋण बाज़ार के और अधिक जटिल होने से, आगे बढ़ने को और अधिक प्रयास आवश्यक है। संक्षेप में हमें लंबी दूरी तय करनी है, पर हमें दृढ़ निश्चय से प्रयास करना होगा।

V. विनिमय दर नीति :

हाल के वर्षों में हमारी विनिमय दर नीति, सुविचारित निगरानी और नियत लक्ष्य या पूर्व-घोषित लक्ष्य या व्याप्ति के बिना लचीलेपन के साथ विनिमय दरों का प्रबंधन करने के स्पष्ट सिद्धान्तों से संचालित है। इसके साथ ही जब कभी अगर ज़रूरत पड़े तो हस्तक्षेप करने और किसी अवधि में संयमित तरीके से मांग और आपूर्ति की स्थितियों से विनिमय दर की गतिविधियों को निश्चित करने की भी हमारी नीति रही है। इस प्रमुख लक्ष्य के अधीन, अधिक अस्थिरता को कम करने, अस्थिर करनेवाली सट्टे की गतिविधियों को उभरने न देने, प्रारक्षित निधियों का उचित स्तर बनाये रखने में साथ देने और संयमित विदेशी मुद्रा बाज़ार का विकास करने की अपेक्षा से विनिमय नीति संचालित होती है।

भारतीय बाज़ार, अन्य विकासशील देशों के बाज़ार जैसे ही अभी बहुत गहन और विस्तृत नहीं है। कभी

कभी विभिन्न अवधियों में मांग और आपूर्ति की अनियमित गति उसकी विशिष्टता होती है। इस स्थिति में, रिज़र्व बैंक अपेक्षाकृत अत्यल्प विदेशी मुद्रा बाज़ार में अनियमित मांग और आपूर्ति को बराबर करने और झटकेदार गतियों को शान्त करने के लिए विदेशी मुद्रा की खरीद और बिक्री के लिए तैयार रहा करता है। फिर भी वैसे हस्तक्षेप का कोई पूर्व निश्चित लक्ष्य या विनिमय दर के आसपास की व्याप्ति निर्धारित नहीं की जाती। भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी मुद्रा निवेश के बढ़ते ही वैसी विषम मांगों की भूमिका में कमी देखी जा सकती है।

इस दृष्टिकोण के साथ हमने बाह्य क्षेत्र में लोच और स्थिरता प्राप्त की है। सेवाओं के निर्यात और धन-प्रेषणों के साथ विदेशी-निवेश प्रवाह की बढ़ती से प्राप्त अधिक आय ने बाह्य क्षेत्र को सुदृढ़ बनाया है। 1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक के नगण्य स्तरों की तुलना में 1993-94 से भारतीय अर्थ-व्यवस्था की सुदृढ़ वृद्धि की संभावनाओं को प्रतिबिम्बित करते हुए देश में सीधी और संविभागीय निवेश की बड़ी राशियों का आगमन हुआ है। कुल विदेशी निवेश आगमन (सीधा और संविभागीय) 1990-91 के 111 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 2006-07 में 24,748 मिलियन अमरीकी डालर हो गया। उसी अवधि में चालू खाता घाटा संतुलित रहा - 1991-92 से जीडीपी का औसतन एक प्रतिशत और वास्तव में 2001-04 में थोड़ा अधिशेष भी दर्ज किया। पूँजी आगमन वर्तमान वित्तपोषण की आवश्यकताओं से अधिक रहने से, समग्र भुगतान संतुलन ने लगातार अधिशेष दर्ज किया। इससे आरक्षित निधियाँ बढ़ गयीं जो अब मार्च 2007 के अंत में 1, 99,179 मिलियन अमरीकी डालर पर पहुँच गयीं। करीबन चार दशकों तक दीर्घकालिक भुगतान संतुलन की समस्याओं से जूझते रहने के बाद 1990 के दशक के मध्य से विदेशी मुद्रा अधिशेषों का उभार, जो लगातार और बड़ी अधिवृद्धि करता है, भारत के लिए नया अनुभव रहा है। 1990 के दशक के प्रारंभ से बीच के वर्षों में चालू खाता को खोल देने, व्यापारिक संरक्षण को कम करने और पूंजी खाता को अंशतः खोल देने से, ये अधिशेष बनने लगे।

भविष्य में विनिमय नीति के संचालन के संकेतों सहित विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ भारत का एकीकरण सुदृढ़ होता जा रहा है। जीडीपी के अनुपात के रूप में माल का व्यापार (अर्थात् निर्यात और आयात) 1990-91 के 14.6 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में 32.5 प्रतिशत हो गया। उसी अवधि में चालू खाते की सकल प्राप्ति और भुगतान जीडीपी के प्रतिशत के रूप में 19.4 प्रतिशत से बढ़कर 50.2 प्रतिशत हो गया। यह भारतीय व्यापार और सेवाओं में संवृद्धि की उछाल को दिखाता है। व्यापार घाटा भी जीडीपी के 6.4 प्रतिशत पर ऊँचा है। पूँजी खाते में तदनुरूप सकल आगमन (कुल आगमन और गमन) जीडीपी के अनुपात में दुगुने से ज़्यादा हो गया है। यह 1990-91 के 12.1 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में 32.4 प्रतिशत (260 बिलियन अमरीकी डालर) हो गया है। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था आज भरपूर अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विषय बन गई है और इस मापीय विद्या के अनुसार संयुक्त राष्ट्र से भी विवाद्य रूप में अधिक खुली हुई है।

समस्याएँ

डच बीमारी

हाल के वर्षों में चालू भुगतानों की संवृद्धि के साथ-साथ चालू प्राप्तियों की भी लाभप्रद संवृद्धि - माल और सेवा दोनों में हुई है। इसलिए यह चालू व्यापारिक स्वरूपों को प्रोत्साहित करने और वित्तीय स्थिरता के लिए कुछ भरोसा देता रहा है। वर्तमान प्राप्तियाँ लगभग 90 प्रतिशत के चालू भुगतानों को अदा करती हैं। चालू

प्राप्तियों के अंतर्गत संवृद्धि दरों के अनुसार साफ़्टवेयर आय से पण्य-निर्यात बहुत तेज़ी से वर्तमान में जीडीपी के 2.9 प्रतिशत पर बढ़ गए हैं। इसके अलावा लगता है कि निजी अंतरण प्राप्तियाँ, जिसमें मुख्यतः विदेश में कार्यरत भारतीयों के प्रेषण शामिल हैं, स्थायी स्वरूप प्राप्त कर चुके हैं। ये हाल के वर्षों में विनिमय दर की गति से अप्रभावित जीडीपी का लगभग 3 प्रतिशत बन गये हैं। इन तत्वों ने अतीत से अधिक चालू खाता घाटे (सिएडी) को संभालने की भारतीय अर्थ-व्यवस्था की क्षमता को सुदृढ़ कर दिया है। इस प्रकार निवल पूंजी आगमन सीएडी अपेक्षाओं से उचित मात्रा में निरंतर अधिक रहे हैं, जिससे प्रारक्षित निधियों की अभिवृद्धि संभव हो सकी।

प्रेषणों का अत्यधिक आगमन और साफ्टवेयर निर्यात की निरंतर तेज़ गति के साथ पूँजी का आगमन, इन सबसे मुद्रा के अधिमूल्यन की संभावना है। फलस्वरूप अन्य पारंपरिक माल क्षेत्रों की प्रतिस्पर्धात्मकता में कमी होती है। यह डच बीमारी (डच डिज़ीज़) के नाम से विख्यात है। इस वास्तविकता को जानते हुए कि माल-क्षेत्र में लोगों की संख्या अधिक है, विनिमय दर प्रबंधन के मानवीय पहलुओं को नहीं भूलना चाहिए। इसलिए अब तक प्रारक्षित निधियों के निर्माण और निष्फलता से डच बीमारी के संलक्षणों को नियंत्रित किया गया है। प्रारक्षित निधि-निर्माण ने नाम मात्र की अत्यधिक बढ़ती को रोका है तो निष्फलता ने उच्चतर मुद्रा-स्फीति को रोका है। तथापि समस्या यह है कि कब तक और कितनी मात्रा तक विनिमय-दर प्रबंधन की वैसी नीति सफल होगी, जब कि हमारे पास वास्तव में बड़ी मात्रा में निरंतर पूँजी का आगमन होता है और उसके साथ ही प्रेषणों तथा साफ़्टवेयर निर्यात से चालू प्राप्तियाँ भी सुदृढ़ होती रहती हैं। अर्थव्यवस्था की उच्चतर संवृद्धि के कार्य-निष्पादन से और भारतीय अर्थ-व्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय भरोसे के बढ़ जाने से पूंजीगत प्राप्तियों में बढ़ोतरी हुई है, जिससे पिछले वर्ष से इस समस्या का महत्व और बढ़ गया है।

चलनिधि प्रबंधन

2001-07 की अवधि के दौरान पूँजी-प्रवाह में, जिससे चलनिधि में भी, विशेष अस्थिरता रही। उसने चलनिधि और विनिमय दर प्रबंधन में काफ़ी समस्याएँ पैदा कीं। पूंजी के आगमन में तेज़ विचलता आंशिक रूप से असंतुलनात्मक कही जा सकती है और मौसमी तथा अल्पकालिक कारणों से हो सकती है। ये कारण अंशतः चक्रीय और संवृद्धि के संवेग की बढ़ती और बैंक ऋण की उत्प्रेरित मांग से और अंशतः संवृद्धि की अपेक्षा से होंगे। इसके अलावा, कोई देश व्यापार चक्र की जिस अवस्था का अनुभव कर रहा हो, उस पर बाहरी बचत का खपाया जाना निर्भर करता है। साथ ही, व्यापार चक्र की अवस्था और पूंजी आगमन दोनों एक दूसरे के अनुरूप भी नहीं हो सकते। इस दशक के प्रारंभिक वर्षों में औद्योगिक संवृद्धि कम रही, इसलिए देश की खपाने की शक्ति निरुद्ध थी। चूंकि अब हम विकासात्मक चरण में चल रहे हैं, चालू खाता विस्तृत हो गया है और अधिक खपाने की शक्ति की संभावना अपने आप पैदा हुई है।

बाज़ार-दरों में बड़े उतार-चढ़ावों को दूर करने और मौद्रिक नीति के स्वरूप के अनुरूप उचित स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए अस्थिर पूँजी आगमन को यथोचित परिचालित करना पड़ा। बाह्य क्षेत्र प्रबंधन और देशी मौद्रिक प्रबंधन के बीच के दृढ़ संबंध को भारतीय अनुभव स्पष्ट करता है। दुनिया के दूसरे देशों को पूँजी की थोड़ी राशि का प्रवाह लगनेवाली बात, विकासशील देश में देशी चलनिधि की बड़ी गति होकर बाज़ार

विनिमय और ब्याज दरों को विकृत कर सकता है। बाह्य क्षेत्र में विदेशी मुद्रा की आरक्षित निधियाँ जिस प्रकार स्थिरता लाने का काम करती हैं, उसी प्रकार देशी मौद्रिक प्रबंधन में हमें चलनिधि की स्थिरता लानेवाले समानान्तर साधन की खोज करनी होगी।

इस प्रसंग में, खुले बाज़ार के परिचालनों को बनाए रखने के लिए बाज़ार स्थिरीकरण योजना (एमएसएस) नामक नया साधन मौद्रिक नीति के उपयोगी साधन के रूप में उभरा है। अप्रैल 2004 से एमएसएस लागू किया गया। इस योजना के अधीन मात्र चलनिधि प्रबंधनार्थ, रिज़र्व बैंक को चलनिधि को खपा लेने के लिए सरकार के खज़ाना बिल/मध्य अवधि की दिनांकित प्रतिभूतियाँ जारी करने का अधिकार है। खज़ाना बिलों/सरकारी प्रतिभूतियों की नीलामी के अर्थागम को रिज़र्व बैंक द्वारा अनुरक्षित तथा परिचालित अलग अभिज्ञेय एमएसएस के नकदी लेखे में अधिकृत किया जाता है। एनएसएस के नकदी लेखे में जमाराशियाँ एमएसएस के तहत जारी किये गये खज़ाना बिलों और/या दिनांकित प्रतिभूतियों के मोचन और/या वापसी खरीद में लगायी जाती हैं। उधारदाता के पास जाने पर एमएसएस की प्रतिभूतियाँ साधारण खजाना बिलों और सरकार की दिनांकित प्रतिभूतियों से अलग करके पहचानी नहीं जा सकतीं। एमएसएस प्रतिभूतियों के लिए ब्याज और बट्टे का भुगतान एमएसएस के लेखे से नहीं किया जाता, परन्तु संघीय बजट में अलग उप शीर्षकों के तहत पारदर्शिता से अलग घटक के रूप में दिखाये जाते हैं। सैद्धांतिक रूप में एमएसएस का प्रचलन एलएएफ को उसके दैनिक चलनिधि प्रबंधक के अभीष्ट कार्य में फिर प्रवृत्त करने में सफल हुआ। अप्रैल 2004 में लागू किये जाने से, एमएसएस मध्यावधि मौद्रिक और चलनिधि प्रबंधन का बहुत उपयोगी साधन रहा है। कम पूंजी आगमन और अधिक चलनिधि आवश्यकताओं के समय पर वह मोचित किया गया है। जब अधिक पूँजी आगमन से देशी चलनिधि अधिक हो सकती है, तब बनाया गया है। सिद्धान्तः अधिक पूँजी आगमन को जो स्थायी या थोड़ी स्थायी मानी जाती है, प्रभावहीन करने के लिए एमएसएस लागू किया गया है। व्यवहार में इसे प्रत्याशित रूप में पहचानना मुश्किल है, इसलिए अवधि के अनुसार एमएसएस के साधन अवरुद्धता को प्रभावी ढंग से घटनोत्तर आधार पर ठीक कर सकते हैं।

अधिक पूँजी आगमन को व्यवस्थित करने और विनिमय दर की अस्थिरता को कम करने के लिए इस नये एमएसएस साधन को लागू करने की हमारी योजना, कई विकासशील देशों से, विशेषतः एशिया में, सामना की जानेवाली वैश्विक पूंजी आगमन की समग्र समस्या की ओर इशारा करती है। 1998 से 2002 तक के पाँच वर्ष की अवधि में करीब 180 बिलियन अमरीकी डालर के औसत से निवल निजी पूँजी आगमन (ईक्विटी + ऋण) बढ़कर लगभग 2006 में 650 बिलियन अमरीकी डालर हो गया है। यह जीडीपी का पांच प्रतिशत होता है (विश्व बैंक, 2007)। उतनी मात्रा के आगमन के खपाये जाने का अर्थ तदनुरूप चालू खाते में जीडीपी के 5 प्रतिशत का घाटा होना है। वैसी परिस्थितियों में विनिमय निर्धारण का क्या दृष्टिकोण होना चाहिए? विनिमय दर के सही स्तर के मूल्यांकन में चालू खाता शेष कहाँ तक अच्छा मार्गदर्शक है? विनिमय दर को चालू खाता कहाँ तक प्रभावित करेगा? सही अर्थ व्यवस्था के लिए चालू खाते के बड़े घाटों का क्या निहितार्थ होते हैं? क्या वे सँभाले जा सकते हैं? अगर नहीं तो विकासशील देशों में वित्तीय स्थिरता का क्या तात्पर्य होता है? भारत के मामले में, जैसे बताया गया है, हमें चालू खाते का लगभग संतुलित घाटा हुआ था, यद्यपि हाल ही के वर्षों में प्रेषणों और

सेवा-निर्यात के कारण व्यापार घाटा उल्लेखनीय रूप से बढ़ गया है। पूँजी खाते की पूर्ण परिवर्तनीयता पर बातचीत करते समय हमें अब इन समस्याओं से निपटना होगा; पर मेरा विश्वास है कि एशिया के अधिकतर देश इन बड़े सवालों का ही सामना करते हैं।

आगे, प्रभावी मौद्रिक प्रबंधन और अल्पकालीन ब्याज दर को बराबर करने के लिए, चलनिधि प्रबंधन की योजना को अनुकूल बनाने की निरन्तर ज़रूरत है। संवृद्धि और वित्तीय स्थिरता के लाभ के लिए चलनिधि प्रबंधन के साधन और तौर-तरीके क्या होने हैं और पूँजी का कितना आगमन विनिमय दर को प्रभावित करता है, इन्हीं प्रमुख सवालों का हम सामना करते आ रहे हैं। पूँजी आगमन की अधिक खुली प्रणाली में ये समस्याएँ ज़्यादा संगत होती हैं। हमारे देश में मौद्रिक और विनिमय दर नीतियों के निर्धारण में वैश्विक गतिविधियाँ अधिक भूमिका निभा सकती हैं। वैश्विक मिलन के परिवेश में, मौद्रिक नीति की स्वतंत्रता को वश में रखना और अधिक मुश्किल हो सकता है, जिसके लिए हमें लक्ष्यों और साधनों के रूप में सख्त विकल्प अपनाने होंगे।

VI. राजकोषीय स्थिति तथा राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम :

कुछ प्रगति

सुधार काल में लोक वित्त ने मिश्रित प्रवृत्ति दिखायी है। 1996-97 तक कुछ सुधार होने के बाद, लोक वित्त बिगड़ गया। आर्थिक गतिविधि के चक्रीय अधोगामी प्रभाव के अनुरूप कर-राजस्व में (जीडीपी के प्रतिशत के रूप में) गिरावट एवं 5 वें वेतन आयोग के पंचाट के प्रभाव जैसे कारणों से ऐसा हुआ। सचमुच 2001-02 में केन्द्र और राज्य सरकारों का कुल राजकोषीय घाटा, 1990-91 के कुल घाटे से अधिक था। 2002-03 से लोक-वित्त में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, जो राजकोषीय समेकन के नीतिगत प्रयास और आर्थिक गतिविधि की वृद्धि के कारण है (सारणी 1)। राज्य स्तरीय बिक्री करों को मूल्य वर्द्धित कर में (वीएटी) रूपांतरित करना संघीय स्तर पर उल्लेखनीय गतिविधि है। इससे कर प्रणाली में बड़ी मात्रा में युक्तता और एकरूपता आयी है। दरों की बहुलता और विशेष प्रावधानों से राज्य बिक्री कर प्रणाली जटिलता से पीड़ित थी। इस कर-सुधार की महत्वपूर्ण विशेषता केन्द्र सरकार की मध्यस्थता में सभी राज्यों से की गयी सलाहकार प्रक्रिया रही है, जिससे इस ठोस सुधार के लिए मतैक्य की परिणति हुई।

समस्याएँ :

हाल ही के सुधार के बावजूद, संयुक्त लोक ऋण ऊँचा बना हुआ है (मार्च 2006 के अंत में जीडीपी का करीबन 79 प्रतिशत)। इस बारे में किया गया बहुत महत्वपूर्ण अद्यतन उपाय है, राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम (एफआरबीएम), 2004 को लागू करना। यह अधिनियम सरकार को 2009 के अन्दर अपने राजस्व घाटे को दूर करने और राजकोषीय घाटे को जीडीपी के 3 प्रतिशत तक कम करने का व्यादेश

सारणी 1 : संयुक्त घाटा-संकेतक केन्द्र और राज्य

(जीडीपी का प्रतिशत)

वर्ष	राजकोषीय घाटा	राजस्व घाटा	प्राथमिक घाटा
2001-02	10.0	7.0	3.7
2002-03	9.6	6.6	3.1
2003-04	8.5	5.8	2.1
2004-05	7.5	3.7	1.4
2005-06	7.4	3.1	1.6
2006-07	6.4	2.2	0.8

स्रोत: भारतीय रिज़र्व बैंक।

देता है। अधिकतर राज्य सरकारों द्वारा (अब तक 25 राज्य) इसी प्रकार के अधिनियम पारित किये गये हैं। इसलिए अब राजकोषीय उत्तरदायित्व हमारी वैधानिक प्रतिबद्धता का अंश बन गया है। फिर भी दोनों घाटों को मिलाने से वे जीडीपी का 6 प्रतिशत बनते हैं, जो वैश्विक मानकों से ऊँचा माना जाता है।

1997 में 5 वें वेतन आयोग के पंचाट के बाद, लोक वित्त दबाव में आये थे। इसलिए लोक बचत ऋणात्मक हो गयी थी। अब संवृद्धि का मार्ग स्पष्टतया ठीक हो गया है और लगता है कि हम 8.5 प्रतिशत से अधिक की जीडीपी संवृद्धि के दीर्घकालीन मार्ग में अग्रसर हैं। 8.5 प्रतिशत से अधिक की संवृद्धि स्वयं उच्च सरकारी वेतनों की मांग उठाएगी और छठा वेतन आयोग गठित होनेवाला है जो राजकोषीय समन्वयन की प्रक्रिया को जटिल बनाएगा।

2008-09 तक एफआरबीएम के लक्ष्य के शून्य राजस्व घाटे को प्राप्त करने के लिए व्यय नियंत्रण, कर राजस्व में वृद्धि और कर छूट में कमी पर निरंतर ध्यान देना आवश्यक है। चूंकि आगामी वर्षों में करेतर राजस्व कमी की ओर है, राजस्व की वृद्धि अत्यावश्यक रूप से जीडीपी के प्रति कर के अनुपात पर निर्भर करेगा। इस संदर्भ में जीडीपी के प्रति कर के अनुपात की कमी का परावर्तन स्वागतार्ह है। बढ़ती की इस प्रवृत्ति को कराधार में विस्तार, कर-छूटों में कटौती करके बनाए रखना होगा। इसी संदर्भ में विभिन्न छूटों के कारण कराधार में होनेवाला ह्रास चिन्ता पैदा करता है।

8.5 प्रतिशत से अधिक की वार्षिक वास्तविक जीडीपी संवृद्धि के सतत उच्चतर वृद्धि-पथ की प्राप्ति के बाद, निरंतर राजकोषीय समेकन की संभावनाएँ बढ़ गयी हैं। कंपनी लाभ और व्यक्तिगत आय में स्वस्थ वृद्धि के चलते हुए कर राजस्व में उछाल हुई है। इसके अलावा, राज्य स्तर पर मूल्य वर्द्धित कर प्रणाली का लागू होना आशावाद का और कारण बनता है। हमें कराधार में कमी की कारणभूत छूटों की रोज़ की माँगों से सतर्क रहना आवश्यक है।

भारतीय राजकोषीय स्थिति के संबंध में ध्यान में रखने लायक महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि दीर्घकालीन किसी भी मानक से ऊँचे राजकोषीय घाटे के बने रहने पर भी, भारत में बैंकिंग या वित्तीय बाज़ार की कोई अस्तव्यस्तता नहीं हुई है। जिन कुछ देशों में बड़ी अस्तव्यस्ता हुई, जैसे तुर्की और अर्जेन्टीना, उनके और हमारे राजकोषीय मानदंडों में ज़्यादा कोई अंतर नहीं हैं। वस्तुतः हमारे अपर्याप्त राजकोषीय कार्यनिष्पादन के कारण इस वर्ष के आरंभ तक भारत को निवेश श्रेणी का योग्यता-निर्धारण नहीं मिला। द्विपक्षीय और बहुपक्षीय बाह्य उधार के सिवाय, जो आनुपातिक तौर पर कम है, भारत का करीबन सारा प्रधान ऋण देशी होता है। यही मुख्य कारण है कि अधिक राजकोषीय दबाव के होने पर भी भारत अपनी वित्तीय स्थिरता को बनाए रख सका है। बाह्य बाज़ारों में मुख्य उधार लेने से भारत दूर रहा है। इससे हम अपने को विनिमय दरों और ब्याज दरों की अस्थिरता से दूर रख सके हैं। बाजार से अधिक उधार लेने की युक्ति भी उधार की लागत का बाज़ारी संकेत देने में उपयोगी रहा है। अंत में इस संबंध में रिज़र्व बैंक में मौद्रिक नीति, देशी ऋण प्रबंधन और वित्तीय क्षेत्र की नीतियों में समन्वयन भी सहायक रहा है तथा सरकार ने भी इस संबंध में मदद की है।

VII. वित्तीय क्षेत्र / बैंकों का दृढ़ीकरण:

भारत की वित्तीय प्रणाली में नियमित, क्रमिक, सतर्क और सुस्थिर प्रक्रिया के द्वारा पर्याप्त रूपांतरण हुआ है। सही सिलसिलेवार और समन्वित नीतिगत उन उपायों से, जो भारतीय वित्तीय क्षेत्र को अधिक प्रतिस्पर्धात्मक,

दक्ष और स्थिर बनाने का लक्ष्य रखता है, वित्तीय क्षेत्र पर्याप्त संतुलित, विविध और लचीला बनकर परिवर्तित हुआ है। संपूर्ण बैंकिंग क्षेत्र का पूंजी पर्याप्तता अनुपात मार्च 1997 के अंत के 10.4 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 2007 के अंत में 12.3 प्रतिशत हो गया है।[1] बैंकिंग क्षेत्र की आस्तियों की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है: निवल अग्रिमों के प्रति निवल अनर्जक आस्तियों का अनुपात मार्च 1997 के अंत के 8.1 प्रतिशत से घटकर मार्च 2007 के अंत में 2.0 प्रतिशत रहा। यह कमी एनपीए वर्गीकरण के मानकों को कड़े बनाए जाने के बावजूद हुई। आस्तियों पर प्रतिलाभ से परिभाषित बैंकों की लाभप्रदता 1996-97 के 0.7 प्रतिशत से बढ़कर 2006-07 में 0.9 प्रतिशत हो गयी। बैंकों की वित्तीय मध्यस्थता की लागत 1995-96 के 2.9 प्रतिशत से घटकर 2006-07 तक करीब 2 प्रतिशत हो गयी। वित्तीय प्रणाली अब सुदृढ़ और लोचदार है तथा वह स्थिरता के परिवेश में त्वरित आर्थिक संवृद्धि को गति दे रही है।

क्रमिक सामंजस्य पर ज़ोर देते हुए, बैंकिंग प्रणाली को चरणबद्ध तरीके में श्रेष्ठ अंतर्राष्ट्रीय मानकों से बेंचमार्क करने के नीतिगत दृष्टिकोण के अनुरूप, भारत में कार्यरत सभी विदेशी बैंक और विदेशी परिचालन रखनेवाले सभी भारतीय वाणिज्य बैंक 31 मार्च 2008 से बासेल II के मानदंडों को अवश्य लागू करेंगे। परन्तु अन्य वाणिज्य बैंक बासेल II को 31 मार्च 2009 तक अवश्य लागू करेंगे।[2] बैंकिंग प्रणाली में व्याप्त परिष्कार और विकास की मात्रा को मानते हुए, यह निश्चय किया गया है बैंक प्रारंभ में ऋण जोखिम के लिए मानकीकृत दृष्टिकोण और परिचालनात्मक जोखिम के लिए मूल संकेतक दृष्टिकोण अपनाएँगे। बैंकों और पर्यवेक्षकों दोनों के द्वारा पर्याप्त कुशलता विकसित किये जाने पर, कुछ बैंकों को आंतरिक दर आधारित (आइआरबी) दृष्टिकोण में बदलने की अनुमति होगी। यद्यपि भारतीय बैंकों के लिए बासेल II को लागू करने हेतु अधिक पूँजी आवश्यक होगी, फिर भी प्रणाली में उपलब्ध गुंजाइश कुछ राहत प्रदान करती है। वर्तमान में आरक्षित परिसंपत्ति की तुलना में जोखिम पूंजी का यह अनुपात (सीआरएआर) 12 प्रतिशत से अधिक है। पूँजी की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में ज़्यादा लोच और अवसर प्रदान करने हेतु रिज़र्व बैंक ने बैंकों को कई लिखतें जारी करने का अधिकार देकर नीतिगत निदेश जारी किया है। नव शास्वत ऋण लिखतें, शास्वत असंचयी अधिमानित शेयर, प्रतिदेय संचयी आधिमानित शेयर और संकर कर्ज़ लिखतें, इनमें से कुछ हैं।

1994 में रिज़र्व बैंक ने बैंकों के वित्तीय पर्यवेक्षण की अपनी प्रथा का ग्रेड बढ़ाने के लिए वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड (बीएफएस) की स्थापना की। यथासमय, विकास वित्तीय संस्थाओं, विशेष मीयादी ऋणदात्री संस्थाओं, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसीज), शहरी सहकारी बैंकों और प्राथमिक व्यापारियों (पीडीज) को बीएफएस के पर्यवेक्षण के अधीन लाया गया। 1994 के प्रारंभ में ही वाणिज्य बैंकिंग क्षेत्र के लिए विवेकी मानंदडों का सेट प्रवर्तित किया गया था। ये पूंजी पर्याप्तता, आय-निर्धारण और आस्ति वर्गीकरण, प्रावधानीकरण और निवेश मानदंड तथा हाल ही में बैंकों के निवेश पोर्टफ़ोलियो से संबंधित थे। समान गतिविधियाँ करने वाली संस्थाओं के विनियामक विलयीकरण के उद्धेश्य से विवेकपूर्ण विनियम और पर्यवेक्षण मानदंड डीएफ़आइ, एनबीएफसी, सहकारी बैंकों और पीडी के लिए चरणबद्ध रूप में लागू किये गये।

अर्थव्यस्था के क्रमिक खुलेपन के साथ-साथ विनियामक और पर्यवेक्षी ढाँचा तैयार किया गया।

[1] 2006-07 के आंकड़े अलेखापरीक्षित और अनंतिम हैं।

[2] तथापि, उन्हें 31 मार्च 2008 से ही बासेल II को लागू करने का विकल्प उपलब्ध है।

नियमित शाखा स्थित निरीक्षण, तकनीकी चालित परोक्ष निगरानी और बाहरी लेखा परीक्षकों के व्यापक उपयोग की त्रिविध योजनाएँ उनमें समाविष्ट थीं। विनियामक और पर्यवेक्षी ढांचे में किये गये सुधारों के परिणामस्वरूप, मुख्य बासेल सिद्धान्तों के अनुपालन की मात्रा में धीरे धीरे प्रगति हुई है। दुर्बलताओं पर तीव्र निगरानी रखने के लिए जोखिम आधारित पर्यवेक्षण (आरबीएस) का प्रवर्तन कर पर्यवेक्षी ढाँचे का ग्रेड और बढ़ाया गया है। दिसंबर 2002 में सुपरिभाषित वित्तीय/विवेकपूर्ण मानदंडों पर गड़बड़वाले बैंकों के खिलाफ अनिवार्य और विवेकपूर्ण दखल की कार्रवाई करने के लिए त्वरित सुधारात्मक कार्रवाई (पीसीए) की योजना लागू की गयी। वित्तीय समूहों के बढ़ते हुए आविर्भाव और उससे उत्पन्न होनेवाली प्रणालीगत संभावित जोखिमों को ध्यान में रखते हुए, समेकित लेखाकरण की पद्धति प्रवर्तित की गयी है। वित्तीय सुदृढ़ता पर आधारित अर्धवार्षिक समीक्षा की जा रही है। इसमें अलग-अलग संस्थाओं की वास्तविक स्थिति और वित्तीय प्रणाली की सुदृढ़ता से संबद्ध विवेकपूर्ण समष्टि संकेतकों का मूल्यांकन किया जाता है। उससे निकलनेवाले परिणामों का प्रचार जनता के बीच विभिन्न रिपोर्टों से किया जाता है।

गत वर्षों में एनपीए के स्तर को नियंत्रित करने के लिए दिवालियेपन की प्रणाली सुदृढ़ की गयी है। बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 के पारित होने के परिणामस्वरूप ऋण वसूली न्यायाधिकरणों (डीआरटी) की स्थापना की गयी। समस्या-ग्रस्त अर्थक्षम संस्थाओं के कंपनी ऋण की सामयिक और पारदर्शी पुनर्व्यवस्था करनेवाले तंत्र के प्रवर्तन के लिए 2001 में कंपनी ऋण पुनर्व्यवस्था (सीडीआर) की योजना शुरू की गयी। यह बीआइएफ़आर (औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड), डीआरटी और अन्य कानूनी कार्यवाहियों की सीमा से बाहर रहेगा। सितंबर 2005 में अर्थक्षम या संभाव्य रूप से अर्थक्षम एसएमई इकाइयों की ऋण पुनर्व्यवस्था के संबंध में समान मार्गदर्शी सिद्धांत जारी किये गये। निरंतर वसूली सुनिश्चित करने में बैंकों को उल्लेखनीय प्रोत्साहन देने के लिए वित्तीय आस्ति का प्रतिभूतिकरण और पुनर्संरचना एवं प्रतिभूति ब्याज का प्रवर्तन अधिनियम (एसएआरएफ़एईएसआइ) 2002 में पारित किया गया। यह बाद में ऋणदाता के अधिकारों के सुनिश्चय के लिए संशोधित किया गया। एनपीए के साथ निपटने में बैंकों को उपलब्ध विकल्प बढ़ाने के उद्धेश्य से जुलाई 2005 में एनपीए के क्रय/विक्रय संबंधी मार्गदर्शी सिद्धांत जारी किये गये। बाद में कुछ परिसंपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी पंजीकृत हुए हैं। इस प्रकार गत वर्षों में अशोध्य ऋणों की वसूली के दिवालियेपन की प्रक्रियाएँ सरल और कारगर बना दी गयी हैं। तथापि रुग्ण औद्योगिक कंपनी अधिनियम अभी भी प्रचलित है।

चूंकि पूँजी के बहिर्प्रवाह और ऋण के अंतर्प्रवाह अधिक अविनियमित होते हैं, इसलिए पूर्ण पूंजीगत लेखे के खुलेपन के संदर्भ में प्रणाली की वित्तीय स्थिरता को सुरक्षित रखना नीति की और चुनौती होगी। इसके लिए वित्तीय बिचौलियों और गैर-वित्तीय संस्थाओं दोनों में बाज़ार का विकास, नियामक कुशलता बढ़ाना एवं मानवीय संसाधन का विकास आवश्यक हैं। बैंकों की कुशलता और उत्पादकता को बढ़ाने के लक्ष्य के अनुरूप निजी क्षेत्र के नये बैंकों और कई विदेशी बैंकों के आगमन और विस्तार से हो रही अधिक प्रतिस्पर्धा से, वाणिज्य बैंकों की कुल आस्तियों में सरकारी क्षेत्र के बैंकों का हिस्सा निरन्तर कम होता जा रहा है। वैसे रूपांतरण के होते हुए भी, अभी भी करीब 70 प्रतिशत की आस्तियाँ और आय सरकारी क्षेत्र के बैंकों की होती है। सरकारी क्षेत्र के

बैंकों ने भी प्रतिस्पर्धा की नई चुनौतियों की प्रतिक्रिया दिखायी है। यह बात बैंकिंग क्षेत्र के कुल लाभ में उनके बढ़ते हुए हिस्से से विदित होती है। यह सूचित करता है कि परिचालनगत लचीलेपन से सरकारी क्षेत्र के बैंक, निजी क्षेत्र के और विदेशी बैंकों से अपेक्षाकृत प्रभावी रूप से स्पर्धा कर रहे हैं। अब सरकारी क्षेत्र के बैंक के प्रबंधन अपनी गतिविधियों के बाज़ारी परिणामों के प्रति शायद अधिक संवेदनशील हैं (मोहन, 2006 अ)। परन्तु वे ही मानवीय संसाधन के विकास में अधिक कठिन चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। उन्हें सभी स्तरों की कुशलता बढ़ाने में बहुत भारी निवेश करना पड़ेगा। नए योजनीय लक्ष्य-निर्धारण के लिए उच्च स्तर पर; इन लक्ष्यों को लागू करने हेतु मध्यम स्तर पर; नई सेवा पद्धति को वितरित करने पर कलम की सुविधायुक्त निचले स्तर में तकनीकी कुशलता के संबंध में बैंकिंग क्षेत्र में व्यापक असमानताएँ पायी जाती हैं: 2000 में निजी क्षेत्र के नए बैंकों के 100 प्रतिशत कंप्यूटर-कार्य से परिचित कर्मचारियों की तुलना में सरकारी क्षेत्र के बैंकों के कुल स्टाफ़ के करीब 20 प्रतिशत और विदेशी बैंकों के 90 प्रतिशत वैसे कर्मचारी थे। (भारतीय रिज़र्व बैंक, 2002)। रिज़र्व बैंक द्वारा दिए गए विवरणानुसार सरकारी क्षेत्र की 71 प्रतिशत शाखाएँ पूर्णतया कंप्यूटरीकृत हैं। तथापि, बैंकिंग क्षेत्र के सुधार पर गठित समिति की रिपोर्ट से शब्द को लेते हुए कहें तो मात्र 'संख्या-गणन' से निकल कर कंप्यूटरीकरण किया जाना आवश्यक है (भारत सरकार, 1998)। इसके बजाय उच्च सेवा और कुशलता के मानकों की प्राप्ति के लिए अधिक से अधिक स्टाफ को कंप्यूटर-कार्य करने में प्रवृत्त करना आवश्यक है। सरकारी क्षेत्र के बैंकों के कर्मचारियों की औसतन आयु 45 होने के कारण, खुले निजी क्षेत्र की तुलना में प्रतिकूल वेतनादि संरचना के होते हुए, उन्हें नई भर्ती की चुनौतियों का सामना करना होगा।

भारत में बैंकों के प्रशासन की मुख्य बात मिश्रित मालिकी की है, जहाँ सरकार का नियन्त्रणाधिकार है। सरकारी क्षेत्र के बैंकों में कार्पोरेट प्रशासन के वैसे पहलू महत्वपूर्ण हैं, न केवल इसलिए कि बैंकिंग उद्योग में सरकारी क्षेत्र के बैंक प्रमुख होते हैं बल्कि इसलिए भी कि वे बैंकिंग कारोबार में निरन्तर बने रहेंगे। जहाँ तक सरकारी क्षेत्र के बैंकों का लोक-स्वामित्व है, वहाँ तक सरकार के स्वामी की और स्वामी-एजेंट की हैसियत के जटिल संबंध के बहु उद्धेश्यों को ध्यान में रखना होगा। सुधार काल में सरकारी क्षेत्र के अधिकतर बैंक शेयर बाज़ार में सूचीबद्ध कराए जाने लगे। इसके परिणामस्वरूप बाजार अधिक आत्मनियंत्रित होने लगा और साथ-साथ उनके प्रशासन के पहलुओं में भी सुधार होने लगा। चूंकि वहाँ व्यक्तिगत शेयरधारिता का प्रवेश हुआ है और बाज़ार के पूंजीकरण, बोर्ड प्रतिनिधित्व अल्पसंख्यक शेयरधारकों के हित से प्रतिबिंबित शेयरधारक के मूल्य संबंधी अनुवर्ती समस्याएँ हैं, इसलिए सरकारी क्षेत्र के बैंकों का व्यापक आधारवाला और विविध स्वामित्व उनके कार्य में गुणात्मक अंतर लाया है। बैंकिंग और वित्तीय बाज़ारों की त्वरित प्रगति व प्रथाओं के परिवर्तन सहित कारोबार के अधिकतर कार्यकलापों की बढ़ती हुई तकनीकी जटिलता के रहते हुए, सरकारी क्षेत्र के बैंकों को मिश्रित मालिकी के संदर्भ में उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए सुविचारित तरीकों का पता लगाना होगा।

पूंजीगत बाज़ार के अधिक खुलेपन का एक अन्य पहलू भारत में विदेशी बैंकों की मौजूदगी से संबंधित है। फ़रवरी 2005 में सरकार और रिज़र्व बैंक ने भारत में बैंकों में विदेशी निवेश की रूपरेखा तैयार की, जिसमें 2009 तक उनकी मौजूदगी संबंधी मार्गदर्शी सिद्धांत दिए हुए हैं। यह रूपरेखा भारत में निजी क्षेत्र के बैंकों के स्वामित्व

और प्रशासन पर उसी समय जारी किये गए समग्र मार्गदर्शी सिद्धांतों से सामंजस्य रखती है। बाज़ार के कुछ खंड़ों में अधिक प्रतिस्पर्धा लाने में विदेशी बैंकों की मौजूदगी बहुत उपयोगी है। वे निवेश बैंकिंग और विदेशी मुद्रा बाज़ार के विकास में महत्वपूर्ण प्रतिभागी होते हैं। संयुक्त राज्य और अन्य देशों में बैंकिंग, बीमा और प्रतिभूति कंपनियों के बीच के पारंपरिक अवरोध हटाए गए हैं। इससे वहाँ हुए परिवर्तनों के कारण सबसे बड़े वित्तीय समूहों का आकार नितान्त बड़ा हो गया है। 1995 और 2004 के बीच विश्व के सबसे बड़े बैंक का आकार, आस्ति की मात्रा से तिगुना, 0.5 ट्रिलियन अमरीकी डालर से 1.5 ट्रिलियन अमरीकी डालर हो गया है, जो भारतीय जीडीपी का डेढ़ गुना होता है। अत्यधिक विलयन की क्रिया से ऐसा हुआ है। उदाहरणार्थ 550 बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के विलय के परिणामस्वरूप जी.पी. मार्गन चेस बना है। यूएस के दस सबसे बड़े बैंक अब उस देश की बैंकिंग आस्तियों के आधे भाग पर नियंत्रण किये हुए हैं, जो 10 वर्ष के पहले के 29 प्रतिशत से बढ़ गया है (इकॉनामिस्ट, 2006)। इसलिए पूंजीगत लेखे की पूर्ण परिवर्तनीयता और विदेशी बैंकों की अधिक मौजूदगी से, कुछ समय बाद कई समस्याएँ पैदा होंगी। पहला, श्रेणीक्रम और भूमिका के परिणामस्वरूप ये बड़े वैश्विक बैंक उभरे हैं तो भारत जैसे देशों में छोटे राष्ट्रीय बैंक कैसे प्रतिस्पर्धा करेंगे और क्या यह आवश्यक होगा कि उन्हें भी खुद अधिक अंतर्राष्ट्रीय मौजूदगी उत्पन्न करनी होगी? दूसरा, विदेशी बैंकों के अपने राष्ट्र के विनियामकों और मेज़बान देश के विनियामकों के बीच संभाव्य विरोध तथा अतिव्यापन पर पर्याप्त चर्चा चल रही है : आगामी वर्षों में इन पर कैसे ध्यान देकर सुलझाया जाएगा? तीसरा, भारत जैसे देश में इन बड़े बैंकों के वैश्विक परिचालन से अपेक्षाकृत छोटी मात्रा में परिचालन होते हैं तो किसी विशिष्ट देश के लिए सेवारत उच्च प्रबंधन का ध्यान अत्यधिक कम होगा। परिणामस्वरूप, वैसे बैंक द्वारा एक देश में किये गये कोई बाज़ार या विनिमायक उल्लंघन उस देश के बैंकिंग या वित्तीय बाज़ार पर उल्लेखनीय प्रभाव डाल सकता है। पर उस बैंक के वैश्विक परिचालनों पर शायद नगण्य असर कर सकता है। हाल ही के वर्षों में देखा गया है कि वैसे वैश्विक बैंकों के खिलाफ़ नियंत्रकों द्वारा अपेक्षाकृत कड़ी विनियामक कार्रवाई की जाने पर भी उनके स्टाक मूल्य या मिलते जुलते अंकीय आधारों पर उनके बाज़ार या प्रतिष्ठा पर नगण्य प्रभाव ही पड़ा है। इस प्रकार वैसे वित्तीय समूहों की मौजूदगी से विनियामक प्रभावशालिता खो जाती है। इसलिए वैसे वैश्विक समूहों द्वारा प्राप्त होनेवाले लाभ और उत्पन्न होनेवाली विनियामक तथा बाज़ार संरचनात्मक और प्रतिस्पर्धा की समस्याओं से अपरिहार्य तनाव है।

अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय समूहों के अविर्भाव के साथ, हम भारतीय समूहों से मिलता-जुलता विकास देख रहे हैं। जैसे कि अधिकतर देशों में है, बैंकिंग, बीमा और प्रतिभूति कंपनियाँ अपने अपने विनियामकों के कार्यक्षेत्र में आते हैं। विनियामकों के बीच उन समूहों को विनियमित करने और प्रत्येक मामले में कौन अग्रणी विनियामक हो, इसकी सहमति सहित, संगठित सहयोग की शुरूआत हुई है। संयुक्त राज्य में, प्रत्येक समूह के केन्द्र में वित्तीय धारक कंपनी होती है और हर एक उसकी सहायक कंपनी होती है। भारत में प्रत्येक समूह की वित्तीय संरचना का कोई सर्व समान स्वरूप अब तक नहीं है; कुछ में मूल कंपनी बैंकिंग कंपनी होती है; जब कि अन्यों में मिश्रित ढाँचा होता है। भारतीय समूहों को प्रतियोगी होने और अंतर्राष्ट्रीय आकार के समतुल्य विकास के लिए उनके विनियामक दृष्टिकोण की स्पष्टता में निरन्तर सुधार आवश्यक है।

VIII. निष्कर्ष

मैंने पिछले डेढ़ दशक में भारत के समष्टिगत आर्थिक और मौद्रिक प्रबंधन का सविस्तार वर्णन किया है। विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में जिसे क्रमिक रूप से शेष विश्व के लिए खोल देने के प्रबंधन की जटिलता स्पष्ट की है। मौद्रिक नीति और विनिमय दर व्यवस्था को विशुद्धतावादी दृष्टिकोण से अधिकतर प्राप्त विवेक के आधार पर अमान्य, अस्पष्ट या मध्यवर्ती व्यवस्था के रूप में परिचालित करना होगा। वैसी व्यवस्था की वैधता का निर्णय उनके परिणामों से प्रकटित क्षमता पर आधारित होगा। इस गणना में मैं मान लेता हूँ कि भारत के समष्टि आर्थिक, मौद्रिक और वित्तीय प्रबंधक न्यायसंगत रूप से पर्याप्त सफ़लता का दावा कर सकते हैं : आर्थिक विकास ऊँचा और त्वरणशील है : मुद्रास्फीति निचले धारणीय स्तर पर चली गयी है : बचत और निवेश बढ़ रहे हैं : वित्तीय बाज़ार नियमित रूप से बढ़ते और विकसित होते रहते हैं : बैंकिंग प्रणाली की लाभप्रदता सुधर गयी है और वह श्रेष्ठ परंपरा के मानकों की ओर प्रवृत्त है : माल और सेवा दोनों के व्यापार में सुदृढ़ विकास होने से बाह्य लेखा लाभप्रद है : और बढ़ता हुआ पूँजी आगमन भारतीय अर्थव्यवस्था में बढ़ते हुए अंतर्राष्ट्रीय विकास का संकेतक है : भारतीय विनिमय दर केन्द्रीय बैंक के विदेशी मुद्रा-हस्तक्षेपों की मौजूदगी में बाज़ार द्वारा संतुलित निर्धारण से दोनों तरफ़ लचीली रही है।

ये सब अतीत की उपलब्धियाँ हैं। जैसे ही हम उच्चतर विकास मार्ग पर अग्रसर होते हैं और पूंजीगत लेखे की पूर्ण परिवर्तनीयता कराते हैं, वैसे ही नई चुनौतियों का मुकाबला करेंगे और हमें निरन्तर उनके अनुकूल बनना है। पूंजीगत लेखे के अधिक खुलेपन से हमें बाज़ारों को इस प्रकार विकसित करना होगा कि वित्तीय और गैर-वित्तीय बाज़ार के प्रतिभागी बाज़ार के उतार-चढ़ावों का बेहतर सामना कर सकने में समर्थ हों। यही हमारा प्रमुख मुद्दा है। ऐसा करते हुए हमें भारत जैसे विविधतापूर्ण देश के अवस्थित किसान से वित्तीय बाज़ार के बहुत विवेकी व्यवसायी तक के बाज़ार के विभिन्न प्रतिभागियों की क्षमताओं से अवगत होना आवश्यक है।

संदर्भ :

अहलूवालिया एम एस (2002) : इकोनॉमिक रिफ़ार्म्स इन इंडिया सिन्स 1991 : हैज ग्राजुअलिज़म वर्क्ड? जर्नल आफ़ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव्ज, खंड 16 सं 3 मु पृ : 67-68।

फ्राइडमैन, बेन्जामिन (2000) ''दि रोल आफ़ इन्टरेस्ट रेट्स इन फ़ेडरल पॉलिसी मेकिंग''। वर्किंग पेपर 8047, राष्ट्रीय आर्थिक अनुसंधान ब्यूरो।

भारत सरकार (2005) : रिपोर्ट ऑफ़ हाइ लेवल एक्सपर्ट कमिटी ऑन कारपोरेट बाण्ड्स एण्ड सिक्यूरिटाइजेशन (अध्यक्ष : आर.एच. पाटील) http://finmin.nic.in/downloads/reports/Report-Expert.pdf.

मेक्कालम, बेन्नट टी. (1981)''प्राइस लेवल डिटरमिनन्सी विथ ऐन इंटरेस्ट पॉलिसी रूल एण्ड राशनल एक्स्पेक्टेशन्स'' जर्नल आफ़ मॉनिटरी इकोनॉमिक्स) खंड 8।

मेक्किन्से एण्ड कंपनी (2005) इंडियन बैंकिंग 2010: टुवर्ड्स ए हाइ पर्फ़ार्मिंग सेक्टर, मुंबई : मेक्किन्से अण्ड कंपनी।

मोहन, राकेश : (2005) 'कम्यूनिकेशन्स इन सेंट्रल बैंक्स : ए पर्सपेक्टिव' रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया बुलेटिन, अक्तूबर 2005।

मोहन, राकेश (2006 ए) 'रीसेन्ट ट्रेन्ड्स इन दि इंडियन डेट मार्केट एण्ड करेंट इनिशिएटिव्ज' रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया बुलेटिन, अप्रैल 2006।

मोहन, राकेश (2006 बी) 'इवोलूशन ऑफ़ सेंट्रल बैंकिंग इन इंडिया' रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया बुलेटिन, जून 2006।

रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया (2002), भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति संबंधी रिपोर्ट, 2001-02, मुंबई : भारतीय रिज़र्व बैंक।

वर्ल्ड बैंक (2007), ग्लोबल डेवलपमेन्ट फाइनैन्स, वाशिंगटन डी.सी.: वर्ल्ड बैंक।